अध्याय 1

पादप प्रजनन : परिभाषा, उद्देश्य एवं विधियाँ
(Plant Breeding : Definition, Objectives & Methods)

परिचय (Introduction)

प्राचीन काल में मनुष्य ने जंगली पौधों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप चयन करते हुए उन्हें उपयोगी बनाया। उसके पश्चात, विभिन्न वैज्ञानिकों ने पादप प्रजनन की विधियाँ बताई जैसेः निल्सन एहिल (Nilsson-Ehle) एवं उनके सहयोगियों ने 1900 के आस–पास एकल पादप वरण (single plant selection) विधि का विकास किया। जोहैन्सन (Johannsen) ने 1903 में शुद्ध वंशक्रम (pure line) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मेंडेल (Mendel) ने 1856 में वंशागति (Inheritance) के नियमों का प्रतिपादन किया। इन नियमों की 1900 में पुनः खोज हुई। इसके बाद जीन अन्योन्यक्रिया (gene interaction), सहलग्नता (linkage) आदि की खोज हुई तथा यह ज्ञात हुआ कि जीन गुणसूत्रों (chromosomes) में स्थित होते हैं। इन पादप प्रजनन के सिद्धान्त एवं विधियों का उपयोग करते हुए हमारे देश में विभिन्न फसलों में अविस्मरणीय कार्य हुआ। उदाहरणतः गेहूँ की बौनी किस्म, गन्ने का नोबलीकरण, संकर मिलेट, कपास की संकर किस्म (H4) आदि।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में खाद्य उत्पादन कई गुणा बढ़ गया और आज हम अनेक देशों को लाखों टन अनाज निर्यात कर रहे हैं। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति करने हेतु कृषि योग्य भूमि को जनसंख्या के अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता है। अतः इसके लिए अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों के बीजों की आवश्यकता होती है। पादप प्रजनन द्वारा उन्नत किस्मों के बीजों का उत्पादन किया जा सकता है।

परिभाषा (Definition):

पादप प्रजनन वह कला तथा विज्ञान है, जिसके द्वारा पौधों को अधिक आर्थिक महत्व के बनाने के उद्देश्य से उनकी आनुवांशिकता में सुधार किया जाता हैं।

फसलों के जीनप्रारूप (Genotype) में परिवर्तन करके उनको मानव के लिए उपयोगी बनाने की क्रिया को पादप प्रजनन (Plant Breeding) कहते हैं।

पादप प्रजनन में हम उन सिद्धान्तों (Principles) एवं विधियों (Methods) का अध्ययन करते हैं, जिनके द्वारा फसलों में उपयोगी परिवर्तन किये जाते हैं।

पादप प्रजनन के उद्देश्य
(Objectives of Plant Breeding)

1. अधिक उपज (Higher Yield) : विभिन्न फसलों की स्थानीय कृषिगत किस्मों की तुलना में अधिक उपज देने वाली किस्मों का निर्माण करना पादप प्रजनन का मुख्य उद्देश्य है, उन्नत किस्मों का बीज बुवाई के लिये उपयोग करने मात्र से उपज में 20–25 प्रतिशत तक बढ़ोतरी संभव है।

2. उत्पाद के गुणों में सुधार करना (Improvement in the Quality of Product): अधिक उपज के साथ–साथ, उत्पाद अन्य गुणों में भी उत्तम होना चाहिए। उत्पाद उपभोक्ताओं की आशाओं के अनुरूप होने पर किसान को उसके उत्पाद के लिए अधिक आर्थिक लाभ मिलता है। उदाहरणार्थ मीठी मक्का, कपास में लम्बा तथा शक्तिशाली रेशा, फलों में आकार एवं स्वाद, दालों मे प्रोटीन की मात्रा, तिलहनों में तेल की मात्रा आदि।

3. कीट एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों का विकास (Development of Disease & Insect Resistant Varieties) : रोगों एवं कीटों से फसलों की हानि रोकने के लिए प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। प्रतिरोधी किस्मों को उगाने से उत्पादन अधिक एवं स्थिर होता है।

4. अधिक दक्षता वाली किस्मों का विकास (Development of Varieties with Increased

efficiency) : नई किस्मों द्वारा खाद/उवर्रकों तथा सिंचाई आदि का पर्याप्त उपयोग उत्पादन क्षमता बढ़ाने में होना चाहिए।

5. शीघ्र पकना (Early Maturity) : फसलों में जल्दी पकने वाली किस्में अधिक उपयोगी होती हैं। धान की जल्दी पकने वाली किस्मों के कारण ही, धान–गेहूँ फसल चक्र संभव हो सका है।

6. समकाल पकना (Synchronous Maturity) : ऐसी फसलें जिनमे एक साथ फसल नही पकने से सम्पूर्ण फसल की कटाई एक बार में नहीं की जा सकती इसलिए कुछ फसलें जैसे मूँग, उड़द आदि में एक साथ पकने वाली किस्मों का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

7. प्रकाश असंवेदिता (Photo insensitivity) : किसी फसल को नए एवं विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में उगाने के लिए प्रकाश असंवेदित किस्मों का विकास आवश्यक होता है।

8. प्रषुप्ति (Dormancy) : कुछ फसलें जैसे बाजरा, ज्वार, जो, गैहूं आदि में प्रषुप्ति अवस्था नही होती अतः पकने के समय बरसात होने पर उनके बीज बाली में ही अंकुरित हो जाते हैं। ऐसी फसलों में थोड़ी प्रषुप्ता वाली किस्मों का विकास महत्त्वपूर्ण है।

9. नई ऋतुओं के लिए किस्में (Varieties for new seasons) : कुछ फसलों को वर्तमान नए मौसम मे उगाया जा रहा है जैसे मक्का को खरीफ, रबी तथा जायद में भी उगाया जा रहा है। नए मौसम मे अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

10. सूखा एवं लवण रोधिता (Drought and Salt resistance): देश की अधिकांश (लगभग 70 प्रतिशत) खेती असिंचित है और अधिकांश भूमि मे लवणों की अधिकता है अतः इन क्षेत्रों के लिए सूखा एवं लवण रोधी किस्मों का विकास आवश्यक है।

11. अविषालु पदार्थों से मुक्ति (Freedom from Toxic Substances): कई फसलों में कुछ अविषालु पदार्थ होते हैं, उदाहरणार्थ सरसों के तेल में मौजूद ईरूसिक अम्ल मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। ऐसी फसलों की उन्नत किस्मों को इन पदार्थों से मुक्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

12. अविसरण (Non Shattering): विसरित न होने वाली किस्मों का विकास मूंग, उड़द, सरसों जैसी फसलों में काफी उपयोगी होगा।

पादप प्रजनन की क्रियाएँ (Activities in Plant Breeding)

उन्नत किस्मों के विकास एवं उनके बीजों के वितरण तक निम्न क्रियाएँ करनी होती हैं:–

1. विविधता का उत्पादन (Creation of Variation) :

फसल सुधार के लिए विविधता एक मूलभूत आवश्यकता होती है। विविधता नही होने पर किसी भी फसल मे सुधार करना असंभव होता है। विविधता निम्न प्रकार से उत्पन्न की जा सकती है :

(i) ग्राम्यन (Domestication) : मनुष्य द्वारा जंगली प्रजातियों को खेती करने के लिए, उगाने को ग्राम्यन कहते हैं। ग्राम्यन, पादप प्रजनन के इतिहास की प्रथम अवस्था है। यह पादप प्रजनन का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण है क्योंकि इसके बाद ही पादप प्रजातियां प्रजनन के लिए उपलब्ध हो पाती हैं।

(ii) जननद्रव्य संग्रह (Germplasm Collection): फसल प्रजातियों तथा उसके जंगली सम्बन्धियों में उपस्थित आनुवांशिक द्रव्य के पूरे समूह को उस प्रजाति का जनन द्रव्य कहा जाता है।

(iii) पादप पुरःस्थापन (Plant Introduction): किसी पादप प्रजाति या किस्म को उस स्थान पर जहाँ पर वह पहले पाई या उगाई नहीं जाती रही हो, को ले जा कर उगाना पादप पुरःस्थापन कहलाता है। पादप पुरःस्थापन पादप प्रजनन की एक प्राचीन और आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधि है।

(iv) संकरण (Hybridization): भिन्न–भिन्न गुणों के पादपों में परस्पर संकरण की क्रिया द्वारा उन्नत किस्मों का विकास किया जाता है।

(v) उत्परिवर्तन (Mutation) : किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशानुगत परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं।

(vi) बहुगुणिता (Polyploidy) : किसी स्पेसीज की कायिक कोशिकाओं में पाये जाने वाले गुणसूत्रों की संख्या 2n से भिन्न एवं अधिक होने कि अवस्था को बहुगुणिता कहते हैं।

(vii) आनुवांशिकी अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) : जैविक कारकों जैसे सूक्ष्म जीवों, जन्तुओं एवं पादप कोशिकाओं के जीन संरचना में परिवर्तन करके तथा उनके अवयवों के नियन्त्रित उपयोग से उपयोगी उत्पादों अथवा सेवाओं के उत्पादन को आनुवांशिकी अभियांत्रिकी कहते हैं।

2. चयन (Selection) :

किसी फसल में उपस्थित विविधता में से अच्छी एवं उत्तम गुणों वाली लाईनों को छाँटकर अलग करना ही चयन कहलाता है। यह पादप प्रजनन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण है। चयन की दक्षता पर ही किसी पादप प्रजनन कार्य की सफलता निर्भर होती है।

3. मूल्यांकन (Evaluation) :

वर्तमान किस्मों एवं विकसित लाईनों के निष्पादन की तुलना की जाती है। यह तुलना कई स्थानों पर दो से अधिक वर्षों तक उपज परीक्षणों के माध्यम से की जाती है।

4. गुणन (Multiplication) :

विमोचित उन्नत किस्मों के बीजों का गुणन कई चरणों में किया जाता है। फसल सुधार का समाज एवं देश को तभी लाभ मिल सकता है जब नई विकसित किस्म के बीज किसानों तक पहुँचें एवं उनको उगाया जाए।

5. वितरण (Distribution) :

उच्च गुणवत्ता वाले बीजों को किसानों तक पहुँचाने के लिए की गई क्रिया को वितरण कहते हैं।

I. ग्राम्यन (Domestication)

ग्राम्यन के कारण फसलों में विसरण (Shattering) या तो समाप्त हो गया है या बहुत ही कम हो गया है। अधिकांश फसलों में पकने की अवधि में भी कमी आयी है। सभी फसलों के दानों तथा आमाप में वृद्धि हुई है।

ग्राम्यन के दौरान वरण (Selection during Domestication) : किसी भी समष्टि में विभिन्न जीनप्रारूपों वाले पौधे उपस्थित होते हैं। इनमें भिन्नता प्राकृतिक कारकों अथवा मानव क्रियाओं के कारण उत्पन्न हो सकती है। इस आधार पर वरण को दो निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. प्राकृतिक वरण (Natural Selection) : जब वरण का कारण प्राकृतिक कारक जैसे– जलवायु, मृदा, जैविक कारक आदि होते हैं तो इसे प्राकृतिक वरण कहा जाता है।

2. कृत्रिम वरण (Artificial Selection) : मानव द्वारा किए जाने वाले वरण को कृत्रिम वरण कहा जाता है। इसके फलस्वरूप पौधे मानव के लिए अधिक उपयोगी बनते जाते हैं।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम वरणों के अभिलक्षणों में अंतर

अभिलक्षण	प्राकृतिक वरण	कृत्रिम वरण
वरण का कारक	प्राकृतिक कारक	मानव क्रियाएँ
जनन	समष्टि के सभी जीनप्रारूपों द्वारा	केवल चयन किए गए जीनप्रारूपों द्वारा
समष्टि अनुकूलन	प्राकृतिक समष्टियों में प्राकृतिक वातावरण में अनुकूलन बढ़ता है	प्रजनन समष्टियों में अनुकूलन बढ़ता है।
समष्टि में विविधता	अधिक विविधता बनी रहती है	जिन दशाओं के लिए चयन किया जाता है, उनमें अनुकूलन बढ़ता है विविधता में कमी आती जाती है।

II. जननद्रव्य (Germplasm)

पादप प्रजनन का उद्देश्य फसलों के जीन प्रारूपों को रूपान्तरित करके मानव के लिए और अधिक उपयोगी बनाना हैं। जीन प्रारूपों में वांछित परिवर्तन के लिए वांछनीय जीन पादप प्रजनकों के पास उपलब्ध होना आवश्यक है। भारत में जननद्रव्य को एकत्रित एवं संरक्षित करना राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR) की जिम्मेदारी है।

परिचय : किसी फसल की प्रजातियों एवं उनके जंगली सम्बन्धियों में उपस्थित सम्पूर्ण आनुवांशिक द्रव्य (Hereditary Material) को उस प्रजाति का जननद्रव्य कहते है। जननद्रव्य को आनुवांशिकी संसाधन भी कहा जाता है। निम्नलिखित लाइनें जननद्रव्य के समूह के अर्न्तगत है।

1. देशी किस्में (Local Races) : देशी किस्में वह होती हैं जिनका विकास योजनाबद्ध तरीके से किसी प्रजनक द्वारा नही होता है तथा लम्बे समय से किसी क्षेत्र में उगायी जाती रही हैं।

2. पुरानी अप्रचलित किस्में (Obsolete Varieties): पादप प्रजनक द्वारा योजनाबद्ध तरीके से विकसित की गयी किस्में जो कभी खेती के लिए उपयोग में ली जाती थीं। इन किस्मों को वर्तमान में खेती के लिए नही उगाया जाता है।

3. खेती के उपयोग में आ रही किस्म (Varieties in Cultivation) : ये किस्में उपज, गुणवत्ता आदि के लिए जीनों का उत्तम स्त्रोत होती हैं। इन किस्मों को किसी नये क्षेत्र में ले जाकर (पादप पुरःस्थापन) सीधे खेती के लिए विमोचित किया जा सकता है।

4. प्रजनन लाइनें (Breeding lines) : प्रजनन कार्यक्रमों द्वारा विकसित लाईनें/समष्टियाँ होती हैं। इनमें अक्सर उपयोगी जीन संयोजन पाये जाते हैं।

5. जंगली प्रारूप एवं जंगली सम्बन्धी (Wild Forms and Wild Relatives): किसी फसल का जंगली प्रारूप, वह जंगली प्रजाति होती है, जिससे कि उस फसल की सीधे उत्पत्ति हुई होती है। जंगली सम्बन्धी शेष उन सभी प्रजातियों को कहते है जो कि फसल प्रजाति के जैविक विकास के दौरान पूर्वज प्रजाति रही होती है। जंगली प्रारूप का सम्बन्धित फसल प्रजाति से संकरण सरल होता है जबकि जंगली सम्बन्धियों के साथ संकरण अपेक्षाकृत कठिन होता है।

6. विशिष्ट आनुवांशिक स्टॉक (Special Genetic Stock) : इस समूह में उत्परिवर्ती लाइनें, क्रोमोसोमीय विपथन युक्त लाइनें, आनुवांशिक चिन्ह लाइनें आदि शामिल होती हैं।

जननद्रव्य का वर्गीकरण (Classification of Germplasm) :

ग्राम्यन के आधार पर जननद्रव्य को दो वर्गों में बाँटा जा

सकता है :

1. कृष्य जननद्रव्य (Cultivated germplasm) : खेतों में उगाई जाने वाली प्रजातियाँ।

2. जंगली जननद्रव्य (Wild germplasm): जंगल में उगने वाली प्रजातियाँ।

उत्पत्ति स्थान के आधार पर भी जननद्रव्य को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. देशी जननद्रव्य (Indigenous germplasm): अपने ही देश में उत्पन्न जननद्रव्य।

2. विदेशी जननद्रव्य (Exotic germplasm): अन्य देशों में उत्पन्न जननद्रव्य।

जीन कोष (Gene Pool) : उन सभी प्रजातियों या विभेदों को जिनमें आपस में संकरण होता है अथवा हो सकता है, इनमें उपस्थित जीनों एवं उनके विकल्पियों को जीन कोष कहते हैं।

1. प्राथमिक जीन कोष (Primary Gene Pool): प्राथमिक जीन कोष के अन्तर्गत वे सभी प्रजातियाँ आती हैं जिनमें सफलतापूर्वक संकरण होता है और जिनके संकर उर्वर (Fertile) होते है।

2. द्वितीयक जीन कोष (Secondary Gene Pool): द्वितीयक जीन कोष सदस्यों का संकरण प्राथमिक जीन कोष के सदस्यों के साथ बहुत ही कठिनाई से होता है। इन संकरणों से प्राप्त F_1 संकर या तो बंध्य (Sterile) होते हैं अथवा आंशिक उर्वर (Partial Fertile) होते हैं।

3. तृतीयक जीन कोष (Tertiary Gene Pool): इस समूह में उन सभी प्रजातियों को रखा जाता है जिनका प्राथमिक जीन कोष के सदस्यों के साथ संकरण बहुत कठिन होता है, और इनसे प्राप्त संकर F_1 पौधे बंध्य (Sterile) होते हैं।

जननद्रव्य संरक्षण (Germplasm Conservation) :

जननद्रव्य को ऐसी स्थिति में रखना, जिससे उसके नष्ट होने की निम्नतम आशंका हो तथा इसकी प्रविष्टियों को या तो सीधे खेत में उगाया जा सके अथवा खेत में उगाने के लिए सफलतापूर्वक तैयार करने की प्रक्रिया को जननद्रव्य संरक्षण कहा जाता है।

जननद्रव्य संरक्षण की दो विधियाँ होती हैः–

(क) स्व–स्थान संरक्षण (*In-situ* conservation): जब जननद्रव्य को उसी स्थान, जिसमें वह प्राकृतिक रूप से उगता है, संरक्षित किया जाता है तो उसे स्व–स्थान जननद्रव्य संरक्षण कहा जाता है।

जिस क्षैत्र को मानव गतिविधियों से परे घोषित करके ऐसी व्यवस्था की जाती है कि जननद्रव्य को कोई खतरा नहीं हो, ऐसे सुरक्षित क्षेत्र को जीन सैंक्चुअरी कहा जाता है।

(ख) बाह्य–स्थान संरक्षण (*Ex-situ* conservation): जननद्रव्य को उसके प्राकृतिक आवास से दूर संरक्षित करना बाह्य स्थान संरक्षण कहलाता है। बाह्य स्थान संरक्षण निम्न रूप में किया जा सकता है।

1. बीज बैंक (Seed Bank)
2. पादप या क्षेत्र बैंक (Plant or field Bank)
3. प्ररोहाग्र बैंक (Shoot-tip Bank)
4. कोशिका एवं अंग बैंक (Cell and Organ Bank)
5. डी. एन. ए. बैंक (DNA Bank)

जननद्रव्य संग्रह (Germplasm Collection) : किसी भी फसल एवं उसके जंगली संबधियों की बहुत सी किस्मों या जीनप्रारूपों के संग्रह को उस फसल का जननद्रव्य संग्रह या जीन बैंक (Gene bank) कहते हैं।

जननद्रव्य संरक्षण की क्रियाएँ (Activities in Germplasm Conservation) : जननद्रव्य संरक्षण में की जाने वाली क्रियाओं को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. संग्रह (Collection)
2. संरक्षण (Conservation)
3. मूल्यांकन (Evaluation)
4. सूचीबद्धन (Cataloguing)
5 गुणन एवं वितरण (Multiplication and Distribution)
6. उपयोग (Utilization)

जननद्रव्य संग्रह जिसमें किसी फसल एवं उससे सम्बन्धित प्रजातियों के विश्व भर से एकत्रित किये गये विभेद हों उसको विश्व संग्रह कहते हैं।

भारत में NBPGR में भारतीय राष्ट्रीय जीन बैंक (Indian National Genebank) स्थित है। इस जीन बैंक के अन्तर्गत जननद्रव्य को बीज बैंकों, प्रक्षेत्र बैंकों, मंदवृद्धि कल्चरों एवं निम्नताप संरक्षित जाइगोटी भ्रूणों के रूप में संरक्षित किया जाता है।

NBPGR मुख्यालय के बीज बैंक में जननद्रव्य को आधार संग्रह (Base Collection) के रूप में लम्बी अवधि के लिए अनुरक्षित किया जाता है। जबकि सक्रिय संग्रहों (Active Collection) को मध्यम अवधि के लिए ब्यूरो मुख्यालय तथा इसके क्षेत्रीय स्टेशनों पर अनुरक्षित करते हैं।

III पादप पुरःस्थापन (Plant Introduction)

पुरःस्थापन के द्वारा एक ही वर्ष में अति शीघ्र सस्य सुधार किया जा सकता है, परन्तु इसकी सफलता अनुकूलन (Acclimatization) पर निर्भर होती है।

अनुकूलन (Acclimatization) : किसी पौधे अथवा पौधों का नये परिवर्तित वातावरण में अभ्यस्त होना तथा अपने आप को वातावरण के अनुकूल बना लेना ही अनुकूलन कहलाता है।

पुरःस्थापन के प्रकार :–

1. प्राथमिक पुरःस्थापन : जब पुरः स्थापित किस्म को बिना किसी चयन के नई किस्म के रूप में विमोचित कर खेती के लिए वितरित किया जाता है तो इसे प्राथमिक पुरःस्थापन कहते हैं।

2. द्वितीयक पुरःस्थापन : जब पुरःस्थापित किस्मों में चयन करके या उनका किसी स्थानीय किस्म से संकरण करके नई उन्नत किस्मों का विकास किया जाता है तो इसे द्वितीयक पुरः स्थापन कहते हैं।

पादप पुरः स्थापन की प्रक्रिया (Procedure of plant introduction) : पादप पुरः स्थापन में कुल छः क्रियाएँ या चरण होते हैं–

1. अर्जन (Procurement) : वांछित जननद्रव्य या किस्म को प्राप्त करने को अर्जन कहते हैं। सभी पादप पुरःस्थापन राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR) नई दिल्ली के माध्यम से होना अनिवार्य है।

2. संगरोध (Quarantine): बाहर से आयातित बीजों तथा पादप उत्पादों का रोग, कीट एवं खरपतवारों से मुक्त होना सुनिश्चित करने की प्रक्रिया को संगरोध कहते हैं।

3. सूचीबद्धन (Cataloguing): ब्यूरो को प्राप्त होने वाले सभी विभेदों (Strains) या प्रविष्टियों (Entries) को एक क्रम संख्या (Serial number) से निर्दिष्ट किया जाता है। इसके साथ ही, प्रत्येक प्रविष्टि की प्रजाति, किस्म, उद्‌गम (Origin), अनुकूलन (Adaptation) अभिलक्षण (Characteristics) आदि रिकार्ड कर लिये जाते हैं।

4. मूल्यांकन (Evaluation): ब्यूरो द्वारा प्राप्त सभी प्रविष्टियों को ब्यूरो के ईसापुर प्रक्षेत्र तथा अन्य चार केन्द्रों पर उगाया जाता है। इन प्रविष्टियों का उपज तथा अन्य अभिलक्षणों के लिए मूल्यांकन किया जाता है।

5. गुणन एवं वितरण (Multiplication and Distribution): जब परीक्षणों में किसी प्रविष्टि की उपज तथा अन्य अभिलक्षण प्रचलित उन्नत किस्मों की तुलना में अधिक उत्कृष्ट होते हैं, तो ऐसी प्रविष्टि को नई किस्म के रूप में विमोचित किया जाता है ऐसी किस्मों के बीज का उत्पादन तथा वितरण बीज निगमों द्वारा किया जाता है।

पादप पुरःस्थापन के लाभ (Advantages of Plant Introduction):

1. इसके द्वारा नई फसलें प्राप्त की जा सकती हैं।
2. पुरःस्थापन द्वारा बिना चयन तथा संकरण किए नई उन्नत किस्में प्राप्त की जा सकती हैं, जिससे समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।
3. फसलों को नए रोग व कीट–मुक्त क्षेत्रों में पुरःस्थापित करके उनकी रोगों व कीटों से रक्षा की जा सकती है।
4. वैज्ञानिक शोध के लिए आवश्यक पादप प्रजातियां प्राप्त की जा सकती है।

पादप पुरःस्थापन के दोष (Disadvantages of Plant Introduction):

1. पुरःस्थापित विभेदों के साथ खरपतवारों का प्रवेश हो जाता है जैसे– सत्यानाशी, गेहूँसा खरपतवार।
2. पुरःस्थापित किस्मों के साथ देश में नए रोगों के रोगजनक भी प्रवेश कर जाते हैं, जैसे श्रीलंका से कॉफी किट्ट आदि।
3. कई पुरःस्थापित प्रजातियां अनिष्टकारी खरपतवार के रूप में फैल जाती है जैसे – जलकुंभी।
4. कुछ पुरःस्थापित प्रजातियों से पारिस्थितिक संतुलन पर खराब प्रभाव पड़ सकता है जैसे – यूकेलिप्टस से भूमिगत जल–भंडारों में कमी।

पादप पुरःस्थापन की उपलब्धियाँ : भारत में पादप पुरःस्थापन द्वारा अनेक फसलें एवं किस्में प्राप्त हुई है :

नई फसलें : आलू, मक्का, मूँगफली, अरहर, मटर, टमाटर, गन्ना, पपीता इत्यादि।

नई किस्में : धान की TN-1, IR-8, IR-28, IR-36 किस्में, गेहूँ की रिड्ले, लरमा रोहो एवं सोनारा 64 इत्यादि।

पुनरोत्पादन (Regeneration) : किसी प्रविष्टि के बीजों या प्रबर्ध्यों की खेत में उगाने तथा इन पौधों से इस प्रविष्टि के नये बीज या प्रवर्ध्यों को प्राप्त करने की किया को पुनरोत्पादन कहते हैं। जननद्रव्य संग्रहों की प्रविष्टियों को प्रत्येक कुछ वर्षों बाद पुनरोत्पादित करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि बीजों/प्रवर्ध्यो की जीवन अवधि सीमित होती है और सभी फसलों के बीजों की अंकुरण क्षमता भण्डारण अवधि के साथ घटती जाती है।

आनुवांशिक अपरदन (Genetic Erosion) : कृष्य प्रारूपों एवं उनके जंगली संबधियों में उपस्थित विविधता में

धीरे–धीरे कमी होने को आनुवांशिक अपरदन कहते हैं।

आनुवांशिक अपरदन के मुख्य कारण :

1. विविधतापूर्ण देशी किस्मों के स्थान पर उन्नत किस्मों का व्यापक स्तर पर उगाया जाना।

2. खेती की सुधरी पद्धतियों के कारण बहुत सी फसलों के जंगली प्रारूप समाप्त होना।

3. जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण जंगली क्षेत्रों को खेती एवं चारागाह के लिए उपयोग में लाना।

4. औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए जल विद्युत परियोजनाएँ, औद्योगिक क्षेत्रों, रेल, सड़कों, भवनों आदि का जंगली क्षेत्रों में निर्माण होना।

5. किसी नई खरपतवार प्रजाति के पुरःस्थापन (Introduction) के कारण फसलों के जंगली सम्बन्धियों का आंशिक या पूर्ण लोप होना।

उद्गम केन्द्र (Centres of origin) : एक रूसी आनुवांशिकीविद् वैविलोव ने पूरे संसार की फसलों एवं उनके जंगली संबधियों के बहुत से विभिन्न प्रारूपों को संग्रह करके व्यापक अध्ययन किया। इन अध्ययनों के आधार पर उसने सुझाव दिया कि फसलों का जंगली प्रजातियों से उद्गम संसार के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में हुआ। इन क्षेत्रों को उन्होनें उद्गम केन्द्र कहा।

सारणी 1.1 महत्त्वपूर्ण फसलों के प्राथमिक उद्गम केन्द्र

प्राथमिक उद्गम केन्द्र	फसलें
चीन	सोयाबीन, मूली, बैंगन।
भारत	धान, अरहर, चना, लोबिया, मूंग, गन्ना, काली मिर्च, आम, हल्दी, केला।
मध्य एशिया या अफगानिस्तान	गेहूँ (ट्रि. एस्टिवम), अलसी, तिल, गाजर, प्याज, लहसुन, बादाम, अंगूर, सेब।
एशिया माइनर या पर्सिया	राई, लूसर्न, पत्तागोभी, जई, अंजीर, अनार, अंगूर एवं बादाम।
भूमध्यसागरीय एबिसीनिया	जौ, मटर, पत्तागोभी, प्याज, सेम, ज्वार, बाजरा, मसूर, कुसुम, अरंड, कॉफी, भिंडी।
मध्य अमेरिका या मेक्सिको	मक्का, राजमा, सेम, शकरकंद, तरबूज, खरबूज, मिर्च, पपीता, अमरूद।
दक्षिण अमेरिका	आलू, मक्का, मूँगफली, अन्नानास, टमाटर, तंबाकू, रबर।

उद्गम केन्द्र के प्रकार (Types of Centres of Origin) :

1. प्राथमिक उद्गम केन्द्र (Primary Centre of Origin): जिस क्षेत्र में किसी फसल की उत्पत्ति जंगली प्रजातियों से होने का विश्वास किया जाता है, उस क्षेत्र को उस फसल का प्राथमिक उद्गम केन्द्र कहा जाता है।

2. द्वितीयक उद्गम केन्द्र (Secondary Centres of Origin): जिन क्षेत्रों में किसी फसल के कृष्य प्ररूपों (Cultivated forms) में बहुत अधिक विविधता पायी जाती है उसे उस फसल का द्वितीयक उद्गम केन्द्र कहा जाता है।

IV. संकरण (Hybridization) :

परिभाषा (Definition) : दो भिन्न जीनप्रारूपों वाले पौधों में से एक विभेद के परागकणों से दूसरे विभेद के पुष्पों का परागण करने तथा इन परागणों से संतति प्राप्त करने को संकरण (Hybridization) कहते हैं।

संकरण शस्य सुधार की सबसे अच्छी, आधुनिक तथा वैज्ञानिक विधि है यद्यपि संकरण की क्रिया का ज्ञान प्राचीन काल से ही था, परन्तु फसलों में सुधार करने के उद्देश्य से इसका प्रयोग 1900 ईस्वी में मेंडल के आनुवांशिकता के नियमों (Laws of inheritance) के पुनः अन्वेषण के बाद ही किया जाने लगा था।

संकरण के उद्देश्य (Objectives of Hybridization):

संकरण का निम्नलिखित में से कोई एक उद्देश्य हो सकता है:–

i. संकर बीज उत्पादन (Hybrid Seed Production)

ii. आनुवांशिक विविधता का उत्पादन (Creation of Genetic Variation)

संकरण के प्रकार (Types of Hybridization): संकरण को निम्नलिखित दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है:–

अंतर प्रभेदी संकरण (Inter Varietal Hybridization): इस प्रकार के संकरणों में एक ही जाति की विभिन्न किस्मों में संकरण किया जाता है। पादप प्रजनन में अन्तर प्रभेदीय संकरण का ही सर्वाधिक उपयोग किया जाता है।

दूरस्थ संकरण (Distant Hybridization): जब दो भिन्न प्रजातियों में संकरण किया जाता है तो उसे अन्तरजातीय संकरण कहते हैं। ये दोनों प्रजाति एक ही जीनस (Genus) या अलग–अलग जीनस की हो सकती है। इसे दूरस्थ संकरण (Distant Hybridization) या विस्तृत संकरण (Wide Cross) भी कहते हैं।

संकरण की विधि (Technique of Hybridization): पादप प्रजनन के लिए संकरण की क्रिया को निम्नलिखित सात भिन्न चरणों में बाँटा जा सकता हैः–

संकरण कार्यक्रम की योजना बनाना (Planning of Hybridization Programme) : संकरण का मुख्य उद्देश्य नई किस्मों का विकास करना होता है। अतः प्रजनक को यह स्पष्ट निर्णय लेना होता है कि वह किस प्रकार की किस्म का विकास करना चाहता है और इस किस्म में वह किन लक्षणों में सुधार करना चाहता है।

1. जनकों का चयन (Selection of Parents): जनकों का चयन मुख्य रूप से संकरण के उद्देश्य पर निर्भर होता है। जिन लक्षणों में सुधार की योजना है, उनका एक जनक में समुचित परिमाण में उपस्थित होना अनिवार्य होता है।

2. जनकों का मूल्यांकन (Evaluation of Parents): यदि सम्बन्धित क्षेत्र में एक या अधिक जनकों का निष्पादन ज्ञात नहीं हो, तो उन्हें एक दो वर्षो तक उस क्षेत्र में उगाना चाहिए।

3. विपुंसन (Emasculation) : परागकणों के परिपक्व होने के पहले परागकोषों या पुंकेसर को, स्त्रीकेसर को बिना क्षति पहुँचाए, किसी पुष्प से निकाल देना या परागकणों को निर्जीव कर देना विपुंसन कहलाता है।

4. थैली लगाना (Bagging) : अवांछित परागण से बचाने के लिए विपुंसन के बाद पुष्पक्रम अथवा पुष्पों को बटर पेपर, पोलीथीन आदि उचित आकार की थैली में बन्द कर दिया जाता है।

5. टैग लगाना (Tagging): विपुंसित पुष्पों में कागज का एक टैग बाँध दिया जाता है। टैग पर कार्बन पेन्सिल से निम्नलिखित सूचना नोट की जाती है।

i. विपुंसन की तिथि

ii. परागण की तिथि एवं

iii. मादा तथा नर जनकों के नाम

6. परागण (Pollination) : नर जनक के परिपक्व एवं उर्वर परागकणों को एकत्रित करके वर्तिकाग्र (Stigma) पर डालने को परागण कहते है।

7. F_1 बीजों को एकत्रित करना व उनका भण्डारण (Collection of F_1 Seeds and their Storage) : प्रत्येक संकरण से उत्पन्न बीजों को सावधानीपूर्वक अलग–अलग एकत्रित करके कागज के लिफाफे में रखते हैं। भण्डारण के लिए इनमें कोई उपयुक्त कीटनाशी मिलाते हैं।

8. संकरण द्वारा प्रजनन की विधियाँ (Methods of Breeding by Hybridization): फसलों में प्रायः निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग की जाती हैं:

1. वंशावली विधि (Pedigree Method)
2. पुंज विधि (Bulk Method)
3. प्रतीप संकरण (Back Cross Method)
4. बहुसंकरण विधि (Multiple Cross Method)

वंशावली विधि (Pedigree Method): वंशावली विधि में F_2 तथा बाद की पीढ़ियों में एकल पौधों का चयन किया जाता है तथा उनकी संततियों को अलग–अलग संतति कतारों में उगाया जाता है। सभी चयन किये गए पौधों के जनक एवं पूर्वज पौधों का रिकार्ड रखा जाता है, जिसे वंशावली रिकार्ड कहते हैं।

वंशावली विधि की प्रक्रिया (Procedure of Pedigree Method) (चित्र 1.1) :

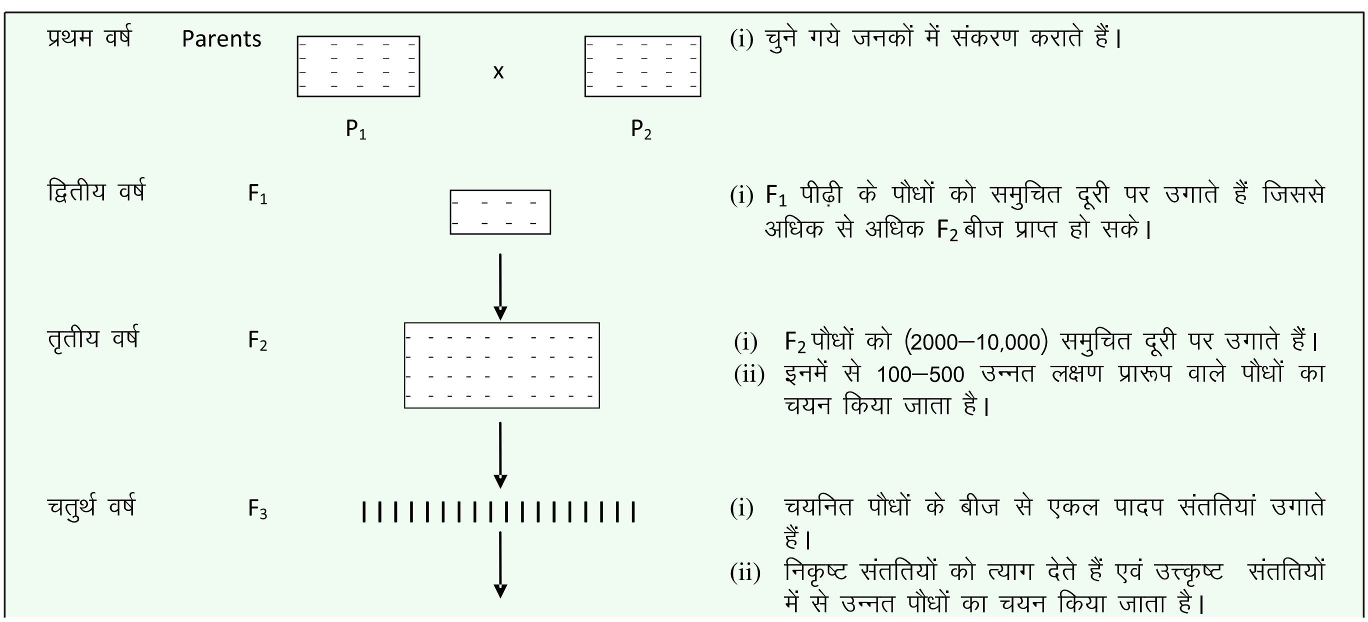

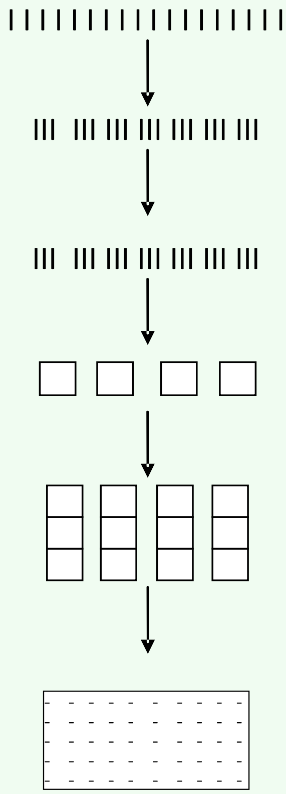

पांचवा वर्ष	F_4	(i) F_3 की क्रियाओं को दोहराते है।
छंठ़ा वर्ष	F_5	(i) एकल पादप संततियों की 1–3 कतारें उगाई जाती हैं। (ii) अच्छी संततियों में से अच्छे पौधों का चयन करते हैं। (iii) उन्नत व समरूप संततियों की कटाई पुंज में की जाती है।
सातवां वर्ष	F_6	(i) F_5 की क्रियाओं को दोहराते हैं।
आठवां वर्ष	F_7	(i) चयनित संततियों का प्रारंभिक उपज परीक्षण किया जाता है।
नवें वर्ष से ग्यारवां वर्ष	F_8- F_{10}	(i) उपरोक्त परीक्षण में मानक से उन्नत संततियों को समन्वित उपज परीक्षण में लगाया जाता है।
बाहरवां वर्ष	F_{11}	(i) विमोचित किस्म के बीज का गुणन एवं वितरण किया जाता है।

चित्रः 1.1 – वंशावली विधि का रेखांचित्र द्वारा प्रदर्शन

पुंज विधि (Bulk Method) : इस विधि का सर्वप्रथम प्रयोग निल्सन एहल (Nilsson Ehle) ने 1908 में किया था। इस विधि में विसंयोजी पीढ़ियाँ पुंज में उगायी जाती है। F_2 पीढ़ी या बाद की किसी पीढ़ी में उन्नत पौधों का चयन करके पादप संततियाँ उगायी जाती हैं और उनका मूल्यांकन किया जाता है।

पुंज विधि की प्रक्रिया (Procedure of Bulk Method) : (चित्र 1.2)

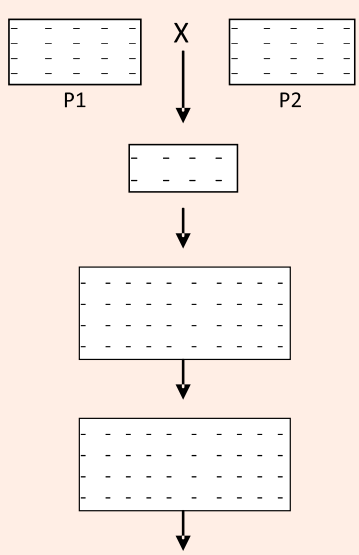

प्रथम वर्ष		(i) चुने गये जनकों में संकरण कराते हैं।
द्वितीय वर्ष	F_1	(i) F_1 पौधों को समुचित दूरी पर उगाकर सभी पौधों के बीजो को पुंज में एकत्रित करते हैं।
तृतीय वर्ष	F_2	(i) पुंज समष्टि को व्यापारिक फसल की भाँति उगाते हैं कटाई व मड़ाई पुंज में करते हैं। (अर्थात् सभी पौधों को एक साथ काटकर उनके बीजों को मिश्रित कर लेते हैं।)
चतुर्थ वर्ष	F_3	(i) F_2 की भांति क्रियाएँ करते हैं।

पांचवा वर्ष	F_4	(i) F_2 की भांति क्रियाएँ करते हैं।
छंठ़ा वर्ष	F_5	(i) F_2 की भांति क्रियाएँ करते हैं।
सातवां वर्ष	F_6	(i) F_2 की भांति क्रियाएँ करते हैं।
आठवां वर्ष	F_7	(i) 30–35 हजार पौधों को समुचित दूरी पर उगाते हैं। (ii) इनमें से उन्नत लक्षण प्रारूप वाले 500–5000 पौधों का चयन करते है एवं इनका बीज अलग–अलग रखते हैं।
नवां वर्ष	F_8	(i) उपर्युक्त बीजों की एकल पादप संततियाँ उगाते हैं। (ii) उत्कृष्ट संततियों का चयन करके उनका बीज अलग–अलग रखते हैं।
दसवां वर्ष	F_9	(i) चयनित संततियों को प्रारंभिक उपज परीक्षण में लगाते हैं। (ii) प्रचलित उन्नत किस्म को मानक के रूप में लगाते हैं।
ग्यारहवें वर्ष से तेरहवें वर्ष तक	F_{10}-F_{12}	(i) सर्वोत्कृष्ट एक या कुछ संततियों को समन्वित उपज परीक्षण में शामिल करते हैं। (ii) मानक से उत्कृष्ट संतति को किस्म के रूप में विमोचित किया जाता है।
चौदहवां वर्ष		(i) विमोचित किए बीज का गुणन एवं वितरण किया जाता है।

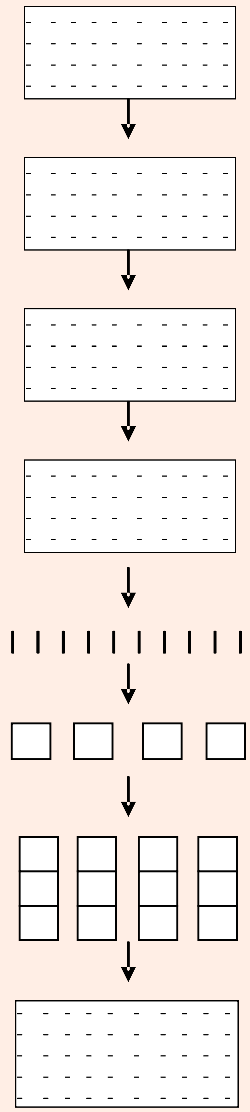

चित्रः 1.2 – पुंज विधि का रेखांचित्र द्वारा प्रदर्शन

प्रतीप संकरण विधि (Back Cross Method) : इस विधि में F_1 तथा बाद की पीढ़ियों का सम्बन्धित F_1 के एक जनक से प्रतीप संकरण किया जाता है। परिणामस्वरूप नई किस्म का जीनप्रारूप प्रतीप संकरण के लिए उपयोग किये गये जनक के लगभग समान होता है। प्रतीप संकरण के लिये उपयोग किये जाने वाले जनक को आवर्ती जनक कहते हैं तथा दूसरे जनक को अनावर्ती जनक कहते है (चित्र 1.3)।

प्रथम वर्ष		अनावर्ती जनक B RR X आवर्ती जनक A rr	(i) जनक A किट्ट ग्राही एवं जनक B किट्ट रोधी। (ii) दोनों जनकों में संकरण कराते हैं।
द्वितीय वर्ष	F_1	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) F_1 जनक A से प्रतीप संकरण कराते हैं।

तृतीय वर्ष	BC_1	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) किट्ट परीक्षण करते है एवं रोधी पौधों का जनक A से प्रतीप संकरण कराते हैं।
चतुर्थ वर्ष	C_2	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) तीसरे वर्ष की क्रियाओं को दोहराते हैं।
पांचवा वर्ष	BC_3	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) तीसरे वर्ष की क्रियाओं को दोहराते हैं।
छठ़ा वर्ष	BC_4	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) तीसरे वर्ष की क्रियाओं को दोहराते हैं।
सातवां वर्ष	BC_5	rr Rr × rr (आवर्ती जनक A)	(i) तीसरे वर्ष की क्रियाओं को दोहराते हैं।
आठवां वर्ष	BC_6	rr Rr	(i) किट्ट परीक्षण करते है एवं रोधी पौधों में स्वपरागण कराते हैं। (ii) स्वपरागित पौधों का बीज अलग–अलग रखते हैं।
नवां वर्ष	BC_6F_2	| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |	(i) उपर्युक्त बीजों से एकल पादप संततियाँ उगाते हैं। (ii) रोधी पौधों में स्वपरागण कराते हैं।
दसवां वर्ष	BC_6F_3	| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |	(i) पुनः उपर्युक्त बीजों से एकल पादप संततियाँ उगाते हैं। (ii) रोधी संततियों के बीजों के अलग–अलग पुंज बनाते हैं।
ग्यारहवां वर्ष			(i) प्रचलित किट्ट रोधी किस्म को मानक के रूप में लेकर उपरोक्त रोग रोधी संततियों का उपज परीक्षण किया जाता है।
बारहवां वर्ष			(i) मानक से अधिक किट्ट रोधिता एवं अधिक उपज देने वाली संतति के बीज का गुणन करके वितरित किया जाता हैं।

चित्रः 1.3 – किट्ट रोधिता (Rust Resistance) के लिए एक प्रभावी जीन के स्थानान्तरण के लिए प्रतीप संकरण विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

प्रतीप संकरण विधि के गुण (Merits of Back Cross Method) : इस विधि के निम्नलिखित गुण होते है :

i. यह विधि सुगम, सस्ती तथा वैज्ञानिक है।

ii. नई प्रभेद में किसी प्रकार के कृषि कार्य का परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं होती है।

iii. नई प्रभेद को किसान तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं क्योंकि वे उसके जानकारी में होती हैं।

iv. इस विधि में हर पीढ़ी में केवल 10–100 पौधे उगाने पड़ते हैं।

प्रतीप संकरण के दोष (**Demerits of Back Cross Method**) : इस विधि के निम्नलिखित दोष होते हैः–

i. इसमें प्रभेद आवर्ती जनक से अच्छी नहीं हो सकती हैं

क्योंकि इसमें अतिक्रामी विविधता का लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

ii. यदि कई लक्षणों का स्थानान्तरण करना हो तो बहुत कठिनाई होती है।

बहुसंकरण विधि (Multiple Cross Method) : विभिन्न उद्भव वाले दो से अधिक पौधों से किसी एक लक्षण की दृष्टि से संकरण करने को बहु–संकरण कहते हैं। बहु–संकरण उस समय किये जाते हैं जब कुछ ऐच्छिक लक्षण कई प्रभेदों में बिखरे हुए होते हैं और इन सभी प्रभेदों से सभी ऐच्छिक लक्षणों को एक ही प्रभेद में लाना आवश्यक होता है।

V. उत्परिवर्तन (Mutation) :

परिभाषा (Definition) : किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशागत परिवर्तन को उत्परिवर्तन (Mutation) कहते हैं। उत्परिवर्तनों की उत्पति जीन की एवं प्लाज्मा जीन की संरचना में परिवर्तन के कारण होती है।

उत्परिवर्तन का इतिहास (History of Mutation): म्यूटेशन शब्द का सर्वप्रथम उपयोग ह्यूगो डि व्रीज (Hugo de Vries) ने 1900 में किया। उन्होनें कई उत्परिवर्तनों का वर्णन किया परन्तु इनमें से अधिकांश उत्परिवर्ती संख्यात्मक क्रोमोसोम विपथनों के कारण पैदा हुए थे। परन्तु डि व्रीज के समय के बहुत पहले ही उत्परिवर्तनों का उपयोग किया जा चुका था। सेट राइट (Sett wright 1791) नामक एक अंग्रेज किसान ने एक छोटे पैरों वाली प्रभावी उत्परिवर्तन वाली भेड़ का उपयोग कर छोटे पैरो वाली ऐंकल नस्ल का विकास किया था। तत्पश्चात् मोर्गन (Morgan) ने 1910 में ड्रोसोफिला में सफेद आँख उत्परिवर्तनों की खोज की और इस लक्षण की वंशागति के आधार पर लिंग सहलग्नता की समुचित व्याख्या की।

उत्परिवर्तन के प्रकार (Types of Mutation) :

स्वतः उत्परिवर्तन (Spontaneous Mutation) : जो उत्परिवर्तन बिना किसी उत्परिवर्तजन के उपचार (treatment) के उत्पन्न होते है, उन्हें स्वतः उत्परिवर्तन (spontaneous mutation) कहा जाता है। ये उत्परिवर्तन बहुत ही कम दर (10^{-7} से 10^{-4} प्रति जीन प्रति पीढ़ी) पर उत्पन्न होते हैं। विभिन्न जीनों की स्वतः उत्परिवर्तन दर काफी भिन्न हो सकती हैं।

प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced Mutation) : जब उत्परिवर्तन किसी भौतिक या रासायनिक उत्परिवर्तजन से उपचार करने पर उत्पन्न होते हैं, तो उन्हें प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced Mutation) कहते हैं। सामान्यतया, प्रेरित उत्परिवर्तन ठीक उसी तरह के होते हैं, जैसे कि स्वतः उत्परिवर्तन होते है किन्तु प्रेरित उत्परिवर्तनों की दर स्वतः उत्परिवर्तनों की दर की कई गुना होती है।

उत्परिवर्तन प्रेरण (Induction of Mutation) : कुछ भौतिक एवं रासायनिक कारकों द्वारा उपचार करने पर जीनों में उत्परिवर्तन होने को उत्परिवर्तन प्रेरण कहते हैं। उत्परिवर्तन प्रेरण में सक्षम कारकों को उत्परिवर्तजन (Mutagen) कहते हैं। इन कारकों के इस गुण को उत्परिवर्तनी गुण (Mutagenic Character) कहा जाता है।

उत्परिवर्तजन (Mutagens) : जो भी कारक उत्परिवर्तन पैदा करते हैं उन्हें उत्परिवर्तजन कहा जाता है। उत्परिवर्तजन मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं।

भौतिक उत्परिवर्तजन (Physical Mutagens) : भौतिक उत्परिवर्तन विकिरण के द्वारा होता है। जैसे – X किरणें, गामा किरणें, पराबैंगनी किरणें इत्यादि।

रसायनिक उत्परिवर्तजन (Chemical Mutagens): अनेक रसायनों में उत्परिवर्तनी गुण पाये जाते हैं। बहुत से उपयोग में लिये जा रहे कृषि रसायन जैसे कीटनाशक, कवक नाशक आदि भी उत्परिवर्तजनी होते हैं।

उत्परिवर्तन प्रजनन (Mutation Breeding) : मुलर (Muller) द्वारा 1927 में एक्स किरणों की उत्परिवर्तनजनी प्रकृति की खोज के बाद उत्परिवर्तन प्रजनन के कार्यक्रम शुरू किये गए। उत्परिवर्तजनों (Mutagens) के उपयोग से किसी जीव में उत्परिवर्तन प्रेरण को उत्परिवर्तजनन कहते है। इस प्रकार के प्रेरित उत्परिवर्तजनों का पादप प्रजनन या फसल सुधार में उपयोग उत्परिवर्तन प्रजनन कहलाता है।

उत्परिवर्तन प्रजनन की विधि (Procedure of Mutation Breeding) : प्रथम वर्ष में उत्परिवर्तजन से उपचारित बीजों को उचित दूरी पर बुवाई करते हैं। सभी पौधों में स्वपरागण व उनके बीजों को अलग–अलग एकत्रित करते हैं। दूसरे वर्ष में एकल पादप संततियाँ उगाते हैं। जिन संततियों में वांछित उत्परिवर्ती विकल्पी हो या होने की संभावना हो, उन पौधों के बीजों को अलग–अलग एकत्रित करते हैं। तीसरे वर्ष में एकल पादप संततियाँ उगाते हैं। उत्कृष्ट उत्परिवर्ती वंशक्रमों को अलग–अलग पुंज में काटते हैं। विसंयोजित हो रहे वंशक्रमों में उन्नत पौधों का चयन करते हैं। चौथे वर्ष में प्रारंभिक उपज परीक्षण करते हैं। उत्तम वंशक्रमों का चयन किया जाता है। पाँचवें से लेकर सातवें वर्ष तक समन्वित उपज परीक्षण करते हैं। सर्वोत्कृष्ट वंशक्रम का नई किस्म के रूप में विमोचन किया जाता है एवं नई किस्म के बीज का गुणन किया जाता है। (चित्र 1.4)

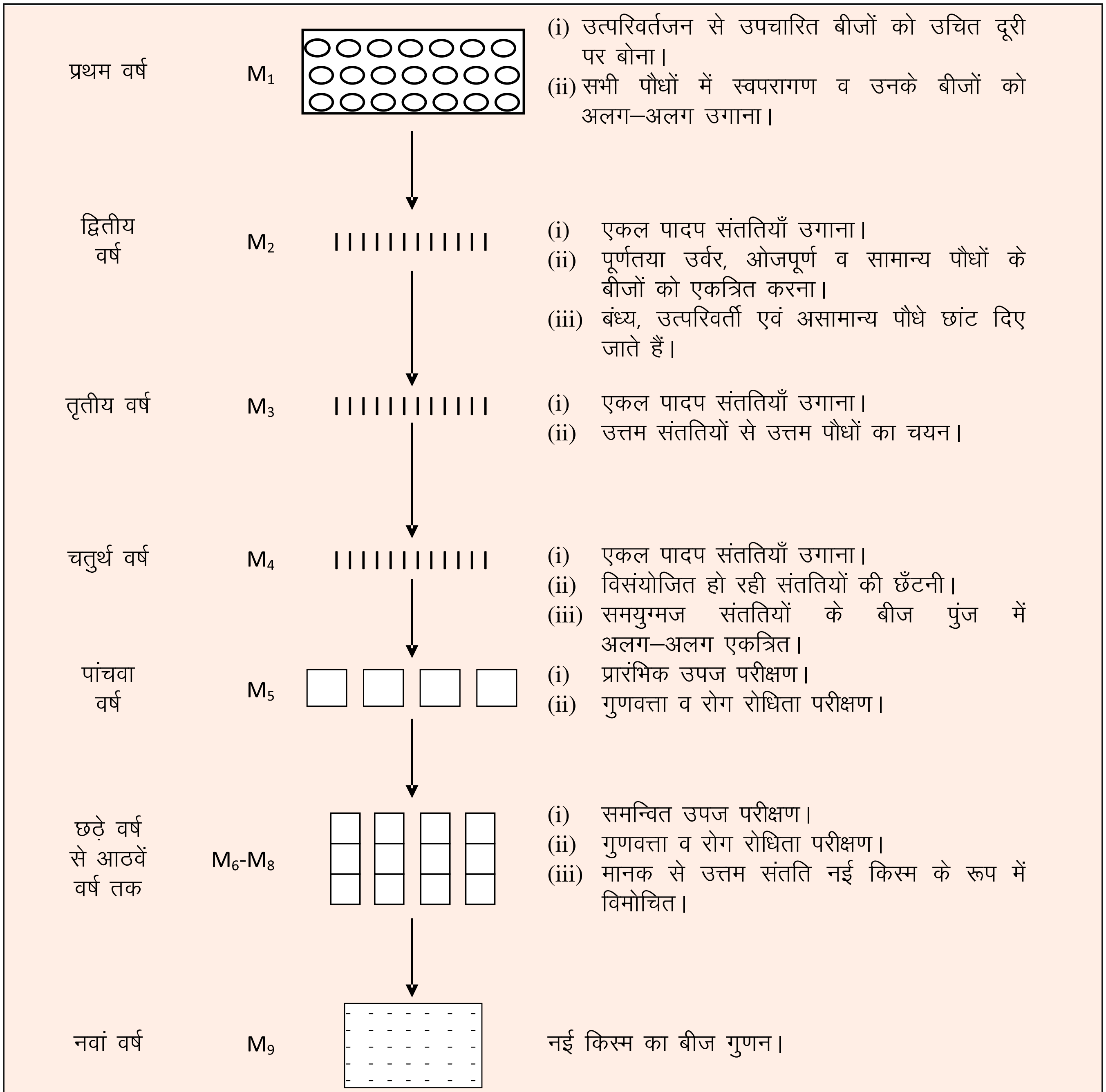

चित्र: 1.4 – बहुजीनी लक्षणों के लिए उत्परिवर्तन प्रजनन की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

उत्परिवर्तन प्रजनन का प्रयोग (Application of Mutation Breeding) : उत्परिवर्तन प्रजनन द्वारा उपज सहित विभिन्न मात्रात्मक लक्षणों में सुधार किया गया है और इस विधि से कई किस्में भी विकसित की गयी हैं।

उत्परिवर्तन प्रजनन द्वारा उपज सहित विभिन्न मात्रात्मक लक्षणों में सुधार किया गया है और इस विधि से कई किस्में भी विकसित की गयी हैं।

VI. बहुगुणिता (Polyploidy) :

परिचय (Introduction) : किसी द्विगुणित प्रजाति की कोशिका में दैहिक गुणसूत्रों की दो प्रतियाँ होती हैं। इसे द्विगुणित अवस्था (2n) कहते हैं। द्विगुणित अवस्था (2n) की तुलना में गुणसूत्रों की संख्या में कमी या वृद्धि को संख्यात्मक गुणसूत्र विपथन कहते हैं (चित्र 1.5)।

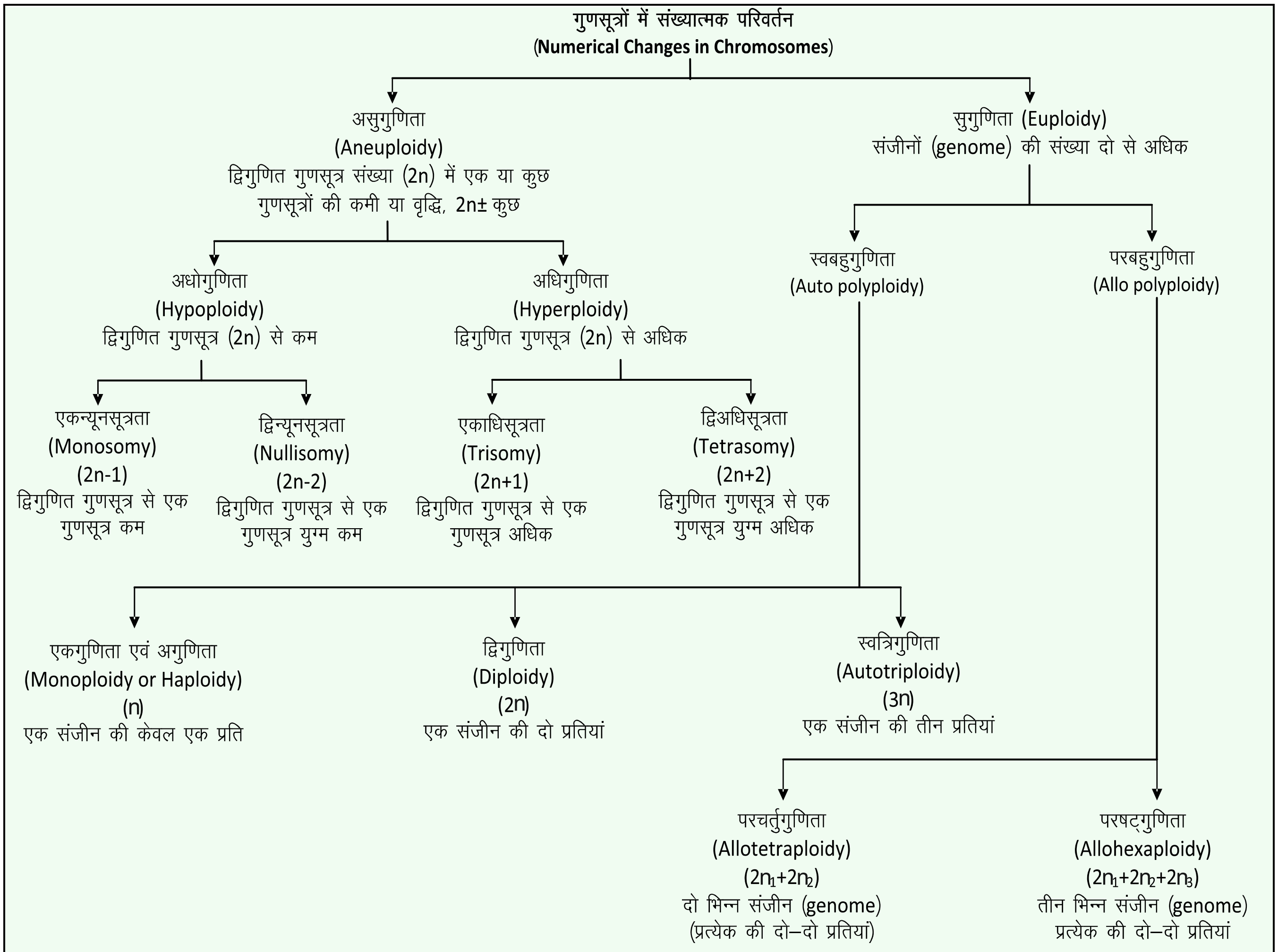

चित्र: 1.5 – बहुगुणिता के प्रकारों का रेखाचित्र

बहुगुणिता के प्रकार (Types of Polyploidy) : बहुगुणिता मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं :

(i) असुगुणिता (Aneuploidy) : इनमें कोशिका के द्विगुणित गुणसूत्रों की (2n) संख्या में एक या एक से अधिक गुणसूत्रों की कमी या वृद्धि होती है जैसे 2n-1, 2n+2 आदि।

(ii) सुगुणिता (Euploidy) : इसमें द्विगुणित गुणसूत्रों की प्रतियों की संख्या में परिवर्तन होता हैं। जैसे 2n, 3n, 4n आदि।

असुगुणिता के पादप प्रजनन में उपयोग (Uses of Aneupolyploidy in Plant Breeding) : आनुवांशिक अध्ययनों में असुगुणितों का लगातार प्रयोग होता है क्योंकि इनसे असामान्य विसंयोजन अनुपात (Abnormal Segregation Ratio) प्राप्त होता है। प्रायः असुगुणितों का प्रयोग पादप प्रजनन में निम्न उद्देश्यों के लिये किया जाता है :–

i. न्यूनसूत्रियों (Aneuploids) के प्रयोग द्वारा प्रतिस्थापन लाइनें (Substitution Lines) बनाई जाती हैं। प्रतिस्थापन लाइनों के माध्यम से एक जाति से दूसरी जाति में रोधिता जीनों का स्थानान्तरण किया जाता है।

ii. एकाधिसूत्रियों (Trisomics) का उपयोग विदेशी योग लाइनों (Alien Addition Lines) के उत्पादन के लिये किया जाता है। इनमें गुणसूत्रों को एक जाति से दूसरी जाति में स्थानान्तरित किया जाता हैं।

iii. असुगुणितों में से मुख्यतः द्विन्यूनसूत्रियों (Nullisomics) का उपयोग यह निश्चित करने के लिये किया जाता है कि कौनसा जीन किस गुणसूत्र पर उपस्थित हैं।

अगुणित का पादप प्रजनन में उपयोग (Uses of Haploid in Plant Breeding) : अगुणित पौधों में क्योंकि गुणसूत्रों का केवल एक ही समुच्चय होता है अतः एक समुच्चय के द्विगुणन (Doubling) से ऐसे पौधे उत्पन्न होते हैं जो सभी जीन्स के लिए समयुग्मज (Homozygous) होंगे। समयुग्मजी द्विगुणितों का उत्पादन ही अगुणितों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपयोग है। गुणसूत्रों का द्विगुणन दो प्रकार से किया जाता है :

(1) कोल्चीसीन (Colchicine) उपचार द्वारा तथा (2) शिरच्छेदन कैलस क्रिया (Decapitation Callus Process) द्वारा।

स्वबहुगुणिता का पादप प्रजनन में उपयोग (Uses of Autopolyploidy in Plant Breeding) :

स्वबहुगुणिता का प्रभाव अलग–अलग प्रजातियों में अलग–अलग होता है। इनमें से कुछ सामान्य प्रभावों का वर्णन द्विगुणित से तुलनात्मक आकार पर नीचे दिया गया है।

1. कुछ प्रजातियों में स्वबहुगुणिता का प्रभाव आमाप (size) एवं ओज (vigour) पर अपेक्षाकृत अधिक होता है।
2. सामान्यतः स्वबहुगुणितों की पत्तियाँ बड़ी एवं मोटी, पुष्प, फल एवं बीज बड़े होते हैं परन्तु इनकी संख्या अपेक्षाकृत द्विगुणित से कम होती है।
3. अधिक क्रोमोसोम संख्या वाली प्रजातियों की अपेक्षा कम क्रोमोसोम संख्या वाली प्रजातियों में स्वबहुगुणिता के सफल होने की संभावना अधिक होती है।
4. स्वपरागित फसलों की अपेक्षा परपरागित फसलों में स्वबहुगुणिता के सफल होने की संभावना अधिक होती है।

परबहुगुणिता का पादप प्रजनन में उपयोग (Use of Allopolyploidy in Plant Breeding) : फसलों के सुधार में स्वबहुगुणिता की अपेक्षा में बहुगुणिता की उपयोगिता बहुत ज्यादा है। परबहुगुणिता को दो प्रकार से फसलों में सुधार के लिए प्रयुक्त किया जाता हैं।

i. बहुगुणिता की सहायता से एक जाति के बहुत से लक्षण एक साथ ही दूसरी जाति में स्थानान्तरित किये जा सकते हैं तथा जिन जातियों में सीधा संकर सम्भव नहीं होता है उनमें उभय द्विगुणित के द्वारा संकरण किये जाते हैं।
ii. बहुगुणिता द्वारा फसलों की बहुत सी नई जातियाँ निकाली गयी हैं। ट्रिटिकेल मानव निर्मित प्रथम बहुगुणित धान्य फसल है जो कि गेंहूँ एवं राई (Rye) के संकरण से उत्पन्न संकर के गुणसूत्रों की संख्या को द्विगुणित करने से उत्पन्न हुआ है।

षट्गुणित गेहूँ का उद्‌विकास (Evolution of Hexaploid Wheat) : गेहूँ एक परबहुगुणित पौधा है जिसमें तीन भिन्न जिनोम A, B एवं D पाये जाते हैं। इन जीनोम की स्रोत प्रजातियां निम्नलिखित हैं:–

जिनोम A = *ट्रिटिकम मोनोकॉकम (Triticum Monococcum)*

जिनोम B = अज्ञात प्रजाति जो कि सम्भवत लुप्त हो चुकी हैं।

जिनोम D = *एजिलोप्स (Aegilops tauschii)*

2. चयन (Selection) :

परिभाषा (Definition) : पूर्व स्थित जीन समूह चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा कृत्रिम रूप से तैयार किया गया हो, में से उत्कृष्ट लक्षणों वाले पौधों को छाँटकर अगली पीढ़ी में उन्हीं की सन्तति को उगाने की विधि को चयन (Selection) कहते है।

प्रकृति में सबसे अधिक अनुकूल पौधे ही पनप पाते है तथा अनुपयुक्त पौधे धीरे–धीरे नष्ट हो जाते हैं। इसे प्राकृतिक चयन (Natural Selection) कहते है तथा जब मनुष्य आवश्यकतानुकूल पौधों का चयन करते है तो उसे कृत्रिम चयन (Artificial Selection) कहते है। अतः चयन का अभिप्राय होता है कि छाँटे गये पौधों में अधिकतर लाभप्रद लक्षण विद्यमान हों। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्वपरागित फसलों में दो विधियाँ अपनायी जाती है।

समूह चयन (Mass Selection) : किसी समष्टि में से एक समान उत्कृष्ट लक्षणों वाले पौधों को अलग छाँटकर तथा उनके बीजों को एक साथ मिला देने की विधि को समूह चयन कहते हैं। (चित्र 1.6)

समूह चयन के गुण (Merits of Mass Selection): समूह चयन के निम्नलिखित गुण होते हैं:

i. समूह चयन द्वारा विकसित किस्में अपेक्षाकृत अधिक अनुकूलित होती हैं।
ii. इसके द्वारा विकसित किस्मों में बहुत आनुवांशिक विविधता उपस्थित होती है। अतः इन किस्मों में पुनः चयन द्वारा सुधार किया जा सकता है।
iii. यह विधि सबसे सरल प्रजनन विधि है।
iv. इस विधि के उपयोग से शुद्ध वंशक्रम किस्मों का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

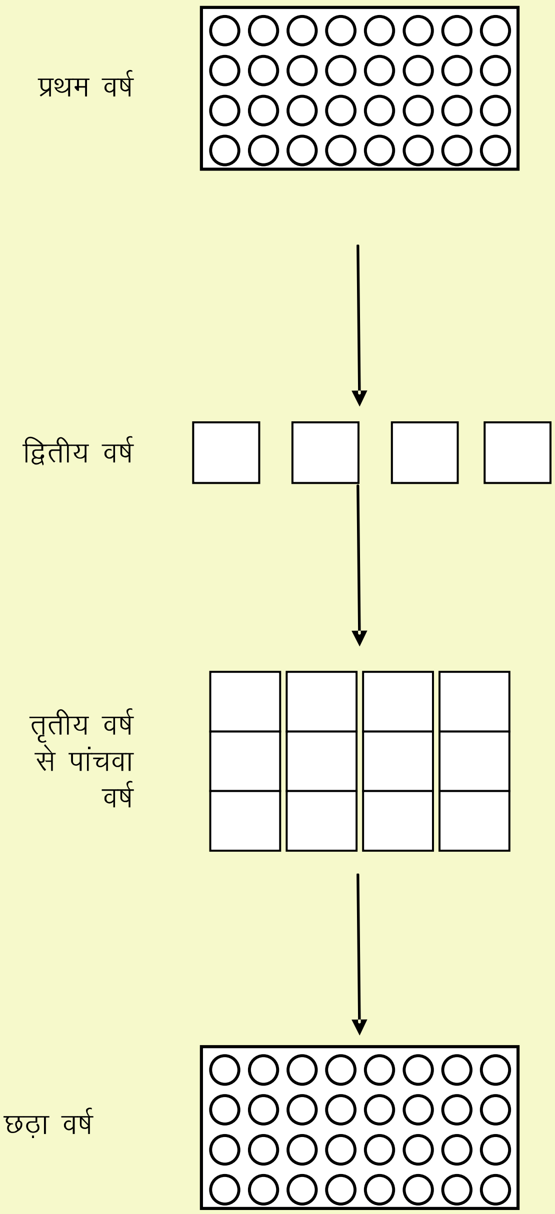

(i) विविधतापूर्ण समष्टि में से एक समान लक्षण प्रारूप वाले 200–1000 उन्नत पौधों का चयन किया जाता है।
(ii) इन पौधों का चयन ओज, रोगरोधिता तथा अन्य उन्नत एवं वांछनीय लक्षणों के लिए किया जाता है।
(iii) चयनित पौधों के बीजों को एक साथ मिला दिया जाता है।

(i) मिश्रित बीज का प्रचलित किस्मों के साथ प्रारम्भिक उपज परीक्षण किया जाता है।
(ii) प्रचलित किस्मों का मानक के रूप में उपयोग किया जाता है।
(iii) चयन से प्राप्त समष्टियों का सूक्ष्म मूल्यांकन किया जाता है।

(i) मानक से उत्कृष्ट समष्टियों का समुचित उपज परीक्षण किया जाता है।
(ii) सर्वोत्तम होने पर नई किस्म के रूप में विमोचन किया जाता है।

(i) विमोचित किस्म का बीज गुणन किया जाता है।
(ii) यह बीज किसानों को उपलब्ध कराया जाता है।

चित्रः 1.6 – समूह वरण की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

समूह चयन के दोष (Demerits of Mass Selection): समूह चयन के निम्नलिखित दोष होते हैं:

i. इस विधि से विकसित किस्मों में समरूपता का अभाव होता है।

ii. इस विधि से शुद्ध वंशक्रम चयन विधि की अपेक्षा कम सुधार होता है।

iii. संतति परीक्षण न करने के कारण चयन किये गये पौधों का वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो पाता है।

iv. बीज प्रमाणीकरण के लिए इस विधि द्वारा विकसित किस्मों की पहचान मुश्किल होती है।

v. इस विधि से सुधार के लिए मूल समष्टि में आनुवांशिक विविधता का उपस्थित होना अनिवार्य है।

शुद्ध वंशक्रम चयन (Pureline Selection)

किसी स्वपरागित प्रजाति के एक पूर्णतया समयुग्मज पौधे की संततियों को शुद्ध वंशक्रम कहते है। किसी भी शुद्ध वंशक्रम के सभी पौधों का जीनप्रारूप एक समान होता है। परिणामस्वरूप उनके लक्षणप्रारूपों में उपस्थित विविधता वंशागत

न होकर केवल वातावरण के कारण होती है। यह शुद्ध वंशक्रम सिद्धान्त है। शुद्ध वंशक्रम चयन विधि (चित्र 1.7)

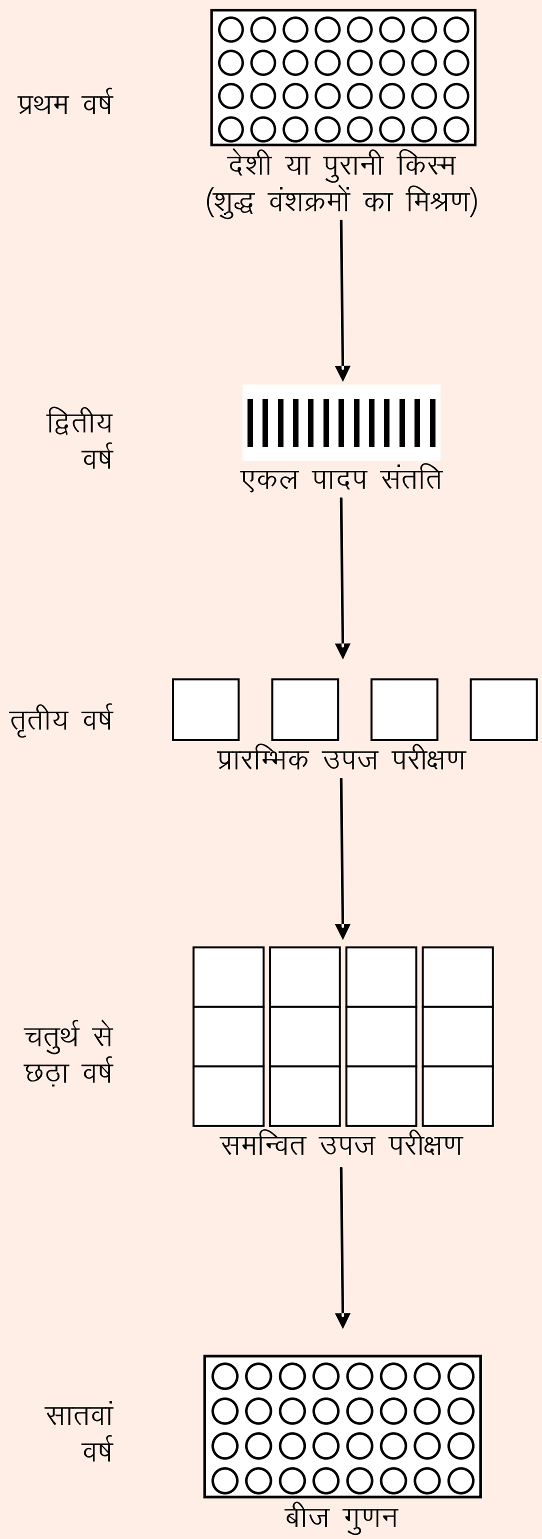

प्रथम वर्ष

(i) किसी विविधतापूर्ण किस्म या समष्टि में से 200–2000 उत्तम लक्षणों वाले पौधों का जैसे पौधों की लम्बाई, पकने की अवधि, दानों का आकार, रोग रोधिता आदि के आधार पर चयन किया जाता है।

(ii) चयन किए गए पौधों के बीजों को अलग–अलग एकत्रित करते है।

द्वितीय वर्ष

(i) चयन किए गए पौधों के बीजों से एकल पादप संततियाँ उगाते हैं अर्थात एक पौधे के बीज से एक अलग कतार या संतति उगाते हैं।

(ii) इन संततियों का दृष्टि मूल्यांकन किया जाता है और सरलता से आंके जा सकने वाले लक्षणों, जैसे पौधे की लम्बाई, रोग रोधिता आदि के लिए चयन किया जाता है।

(iii) केवल उत्तम एवं उपयुक्त लक्षणों वाली कुछ (10–50) संततियों को अगले वर्ष के परीक्षण में शामिल किया जाता है।

तृतीय वर्ष

(i) उन्नत संततियों का प्रारम्भिक उपज परीक्षण किया जाता है।

(ii) प्रचलित उन्नत किस्मों का मानक के रूप में उपयोग करते हैं।

चतुर्थ से छठ़ा वर्ष

(i) उन्नत संततियों का समन्वित उपज परीक्षण किया जाता है।

(ii) रोग रोधिता एवं गुणवत्ता परीक्षण करते हैं।

(iii) सर्वोत्कृष्ट संतति नई किस्म के रूप में विमोचित होती है।

सातवां वर्ष

(i) विमोचित किस्म के बीज का गुणन किया जाता है।

चित्रः 1.7 – शुद्ध वंशक्रम वरण की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

शुद्ध वंशक्रम चयन के गुण (Merits of Pureline Selection) : इस विधि के निम्नलिखित गुण होते हैं:–

i. किसी भी विविधतापूर्ण समष्टि में सर्वाधिक सुधार होता है।

ii. विकसित किस्मों में शुद्ध वंशक्रम के कारण इनमें आनुवांशिक विविधता का पूर्ण अभाव होता है।

iii. विकसित किस्म को बीज प्रमाणीकरण के लिए पहचानना बहुत आसान होता है।

शुद्ध वंशक्रम चयन के दोष (Demerits of Pureline Selection) : इस विधि के निम्नलिखित दोष होते हैं:–

i. इस विधि की सफलता के लिए मूल किस्म में आनुवांशिक विविधता का उपस्थित होना अनिवार्य है।

ii. विकसित किस्मों का अनुकूलन मूल किस्म की अपेक्षा कम हो सकता है।

iii. समूह चयन की अपेक्षा अधिक समय, श्रम तथा धन की आवश्यकता होती है।

शुद्ध वंशक्रम चयन तथा समूह चयन में तुलना (Comparison between Pure line Selection and Mass Selection) :

क्र. सं.	विवरण	शुद्ध वंशक्रम चयन	समूह चयन
1.	विकसित किस्म	एक शुद्ध वंशक्रम	कई शुद्ध वंशक्रमों का मिश्रण
2.	नई किस्म की अनुकूलशीलता	मूल किस्म से कम होती है	मूल किस्म के समान ही होती है।
3.	नई किस्म का उत्पाद	समरूप	अपेक्षाकृत विविधतापूर्ण
4.	बीज प्रमाणीकरण के लिए पहचान	सरल	अपेक्षाकृत कठिन
5.	नई किस्म को विमोचित होने में लगा समय	लगभग 8 वर्ष	लगभग 7 वर्ष
6.	नई किस्म में पुनः चयन का प्रभाव	प्रभावहीन	प्रभावशाली
7.	फसल की परागण विधि	स्वपरागण	स्वपरागण तथा परपरागण दोनों
8.	नई किस्म में आनुवांशिक विविधता	अनुपस्थित	उपस्थित
9.	संतति चयन	सदैव किया जाता है	साधारणतया नहीं किया जाता है
10.	सुधार का परिणाम	सर्वाधिक	सर्वाधिक से कम

परपरागित फसलों में चयन की विधियाँ (Selection Methods of cross-pollinated Crops) :

इन फसलों में उपयोग में लाई जाने वाली अनेक चयन विधियाँ हैं। इनमें से कुछ मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं:– (1) समूह चयन (2) आवर्ती चयन। इन विधियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है।

समूह चयन (Mass Selection) : परपरागित फसलों में सुधार की यह सबसे पुरानी विधि है। (चित्र 1.8)

इस विधि की सफलता पादप प्रजनक की योग्यता तथा जनसंख्या में उपस्थित वंशानुगत विभिन्नता पर निर्भर होती है।

समूह चयन में अच्छे व वांछनीय लक्षणप्रारूपों वाले बहुत से पौधे चुने जाते हैं। इन पौधों पर मुक्त परागण अथवा प्राकृतिक परागण द्वारा उत्पन्न बीजों को एकत्रित कर आपस में मिला लिया जाता है। इसी प्रक्रिया को पुनः दोहराया जाता है। इस प्रकार प्राप्त बीजों के मिश्रण से अगली पीढ़ी उगाई जाती है। इस विधि की सफलता पादप प्रजनक की योग्यता तथा जनसंख्या में उपस्थित वंशानुगत विभिन्नता पर निर्भर होती है।

आवर्ती चयन (Recurrent Selection) : आवर्ती चयन का विचार सर्वप्रथम हेज एवं गार्बर (Hayes and Garber) ने 1919 तथा ईस्ट एवं जोन्स (East & Jones) ने 1920 में स्वतंत्र रूप से दिया था। आवर्ती चयन का उद्देश्य परपरागित फसलों में किसी एक विशेष लक्षण के लिए अधिक से अधिक एच्छिक जीनों को एक जनसंख्या में एकत्रित करना होता है तथा साथ ही साथ जनसंख्या में आनुवांशिक विविधता भी बनी रहे। आवर्ती चयन मूल रूप से निम्नलिखित चार प्रकार के होते है :

1. सरल आवर्ती चयन (Simple Recurrent Selection)
2. सामान्य संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन (Recurrent Selection for General Combining Ability)
3. विशिष्ट संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन (Recurrent Selection for Specific Combining Ability)
4. व्युत्क्रम आवर्ती चयन **(Reciprocal Recurrent Selection)**

सरल आवर्ती चयन (Simple Recurrent Selection) : सरल आवर्ती चयन एवं अन्य आवर्ती चयन विधियाँ मूलतः भुट्टे से पंक्ति के रूपान्तरण हैं। (चित्र 1.9)

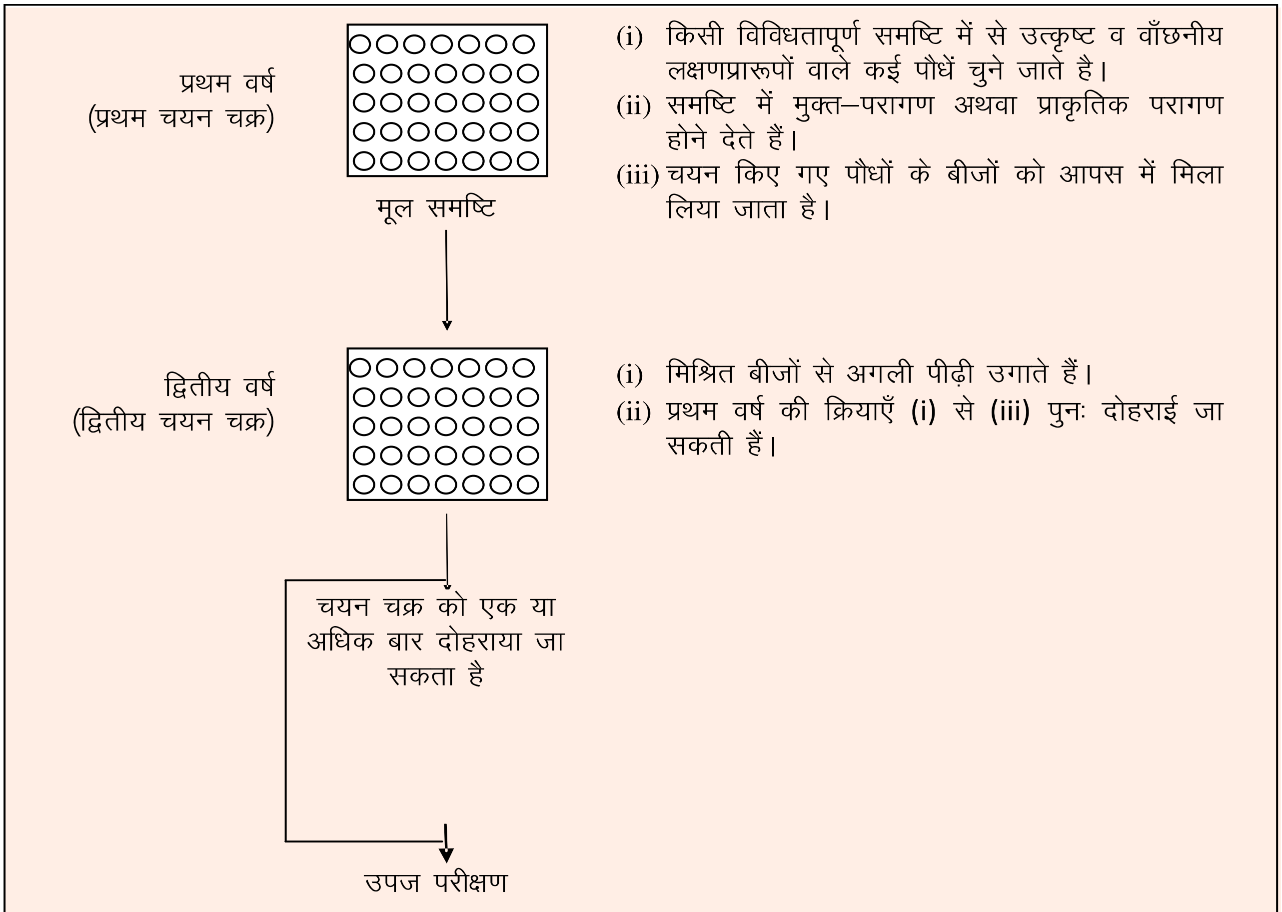

चित्रः 1.8 – पर–परागित फसलों में समूह चयन का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

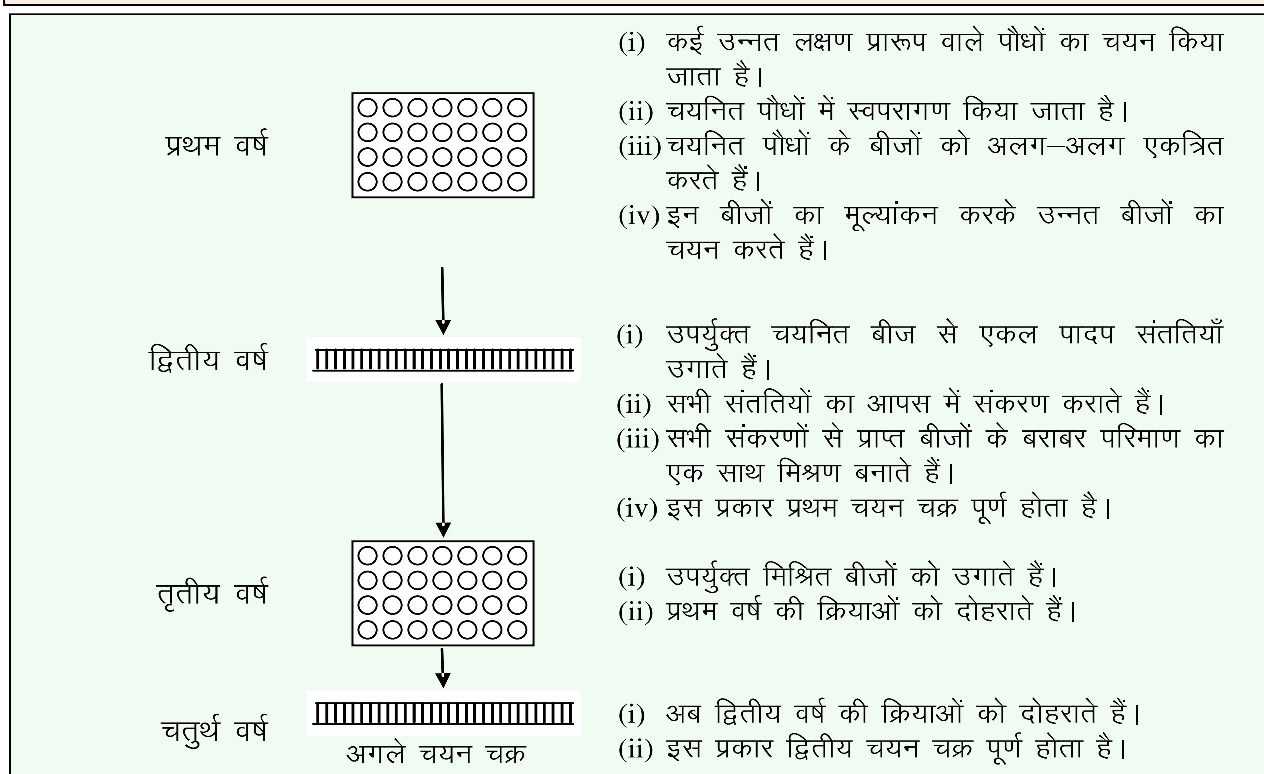

चित्रः 1.9 – सरल आवर्ती चयन की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

सामान्य संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन (Recurrent Selection for General Combining Ability) : इस विधि का प्रस्ताव जेंकिन्स (Jenkins) ने 1940 में दिया था। (चित्र 1.10)

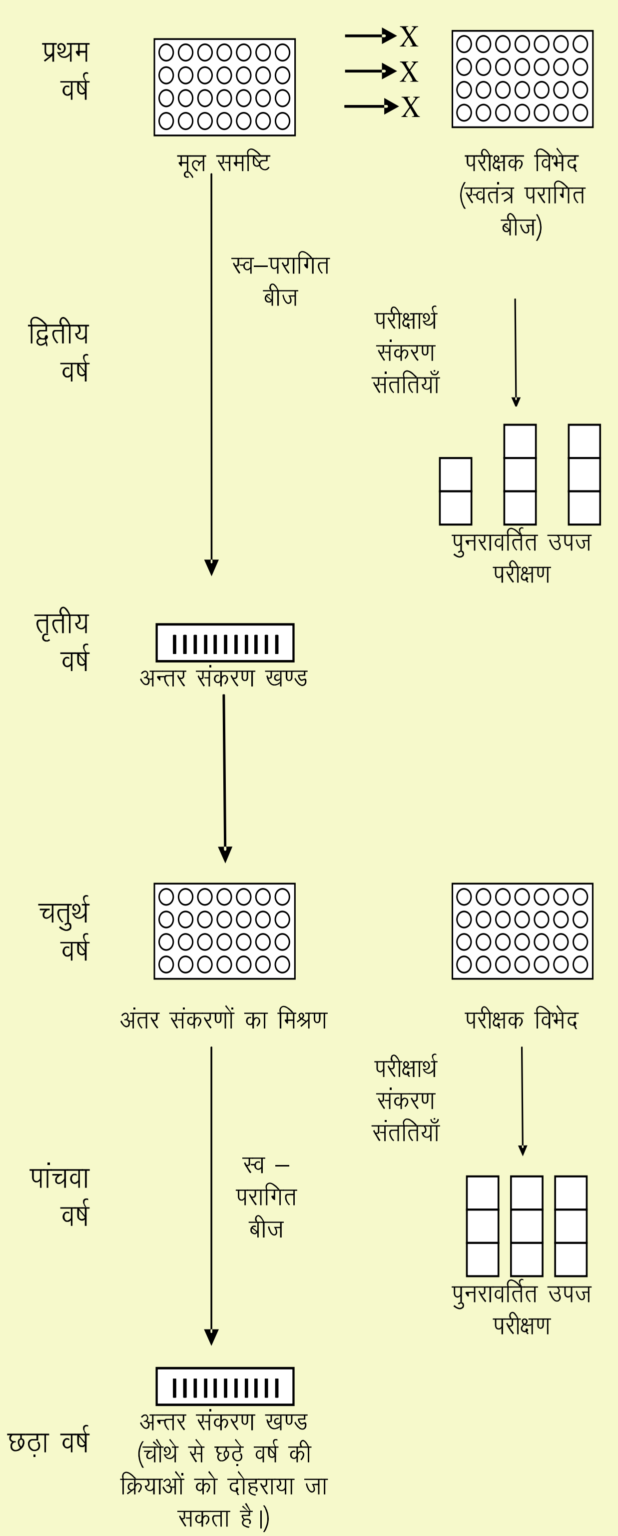

(i) किसी समष्टि से कई उन्नत पौधों का चयन करते हैं।
(ii) चयनित पौधों में स्वपरागण होने देते हैं।
(iii) साथ ही सामान्य संयोजन क्षमता पता करने के लिए किसी परिक्षक विभेद के पौधों (8–10) से संकरित करते हैं।
(iv) चयनित पौधों को (नर जनक के रूप में) एक परिक्षक विभेद के (8–10) पौधों (मादा जनक के रूप में) से संकरित करते हैं।
(v) प्रत्येक चयन किए गए पौधे के स्वपरागण तथा परीक्षार्थ संकरण से उत्पन्न बीजों को अलग–अलग एकत्रित करते हैं।

(i) सभी पौधों की परीक्षार्थ संकरण संततियों को एक पुनरावर्तित उपज परीक्षण में उगाते हैं।
(ii) उत्कृष्ट संततियों को छांट लेते हैं। इन पौधों की सामान्य संयोजन क्षमता अन्य व्यक्तिगत पौधों (S_0 Plants) से अधिक होती है।

(i) उत्कृष्ट परीक्षार्थ संकरण संतति उत्पन्न करने वाले पौधों के स्व–परागित बीजों से एकल पादप संततियाँ उगाते हैं।
(ii) सभी संततियों का आपस में सभी संभव संयोजनों में संकरण कराते हैं।
(iii) सभी संकरणों से प्राप्त बीजों का बराबर मात्रा में मिश्रण बनाते हैं।
(iv) इस प्रकार प्रथम चयन चक्र–पूर्ण होता है।

(i) मिश्रित बीजों को उगाते हैं।
(ii) प्रथम वर्ष की क्रियाएँ दोहराते हैं।

(i) द्वितीय वर्ष की क्रियाएँ दोहराते हैं।

(i) तृतीय वर्ष की क्रियाएँ दोहराते हैं।
(ii) इस प्रकार द्वितीय चयन चक्र पूर्ण होता है।

इस प्रकार से जब तक वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो जाते हैं तब तक एक चक्र के बाद दूसरा चक्र चलता रहता है।

चित्रः 1.10 – सामान्य संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती वरण विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

विशिष्ट संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन (Recurrent Selection for Specific Combining Ability) : इस विधि का प्रस्ताव हल (Hull) ने 1945 में दिया था। इस आवर्ती चयन की विधि ठीक सामान्य संयोजन क्षमता के लिये आवर्त्ती चयन की विधि के समान ही होती है, अन्तर केवल इतना होता है कि इस प्रकार के आवर्ती चयन का उद्देश्य पादप जनसंख्या की विशिष्ट संयोजन क्षमता बढ़ाना होता है। इसमें विशिष्ट संयोजन क्षमता के लिये आवर्ती चयन में परीक्षक के रूप में अन्तः प्रजात विभेद से संकरण कराया जाता है (चित्र 1.11)।

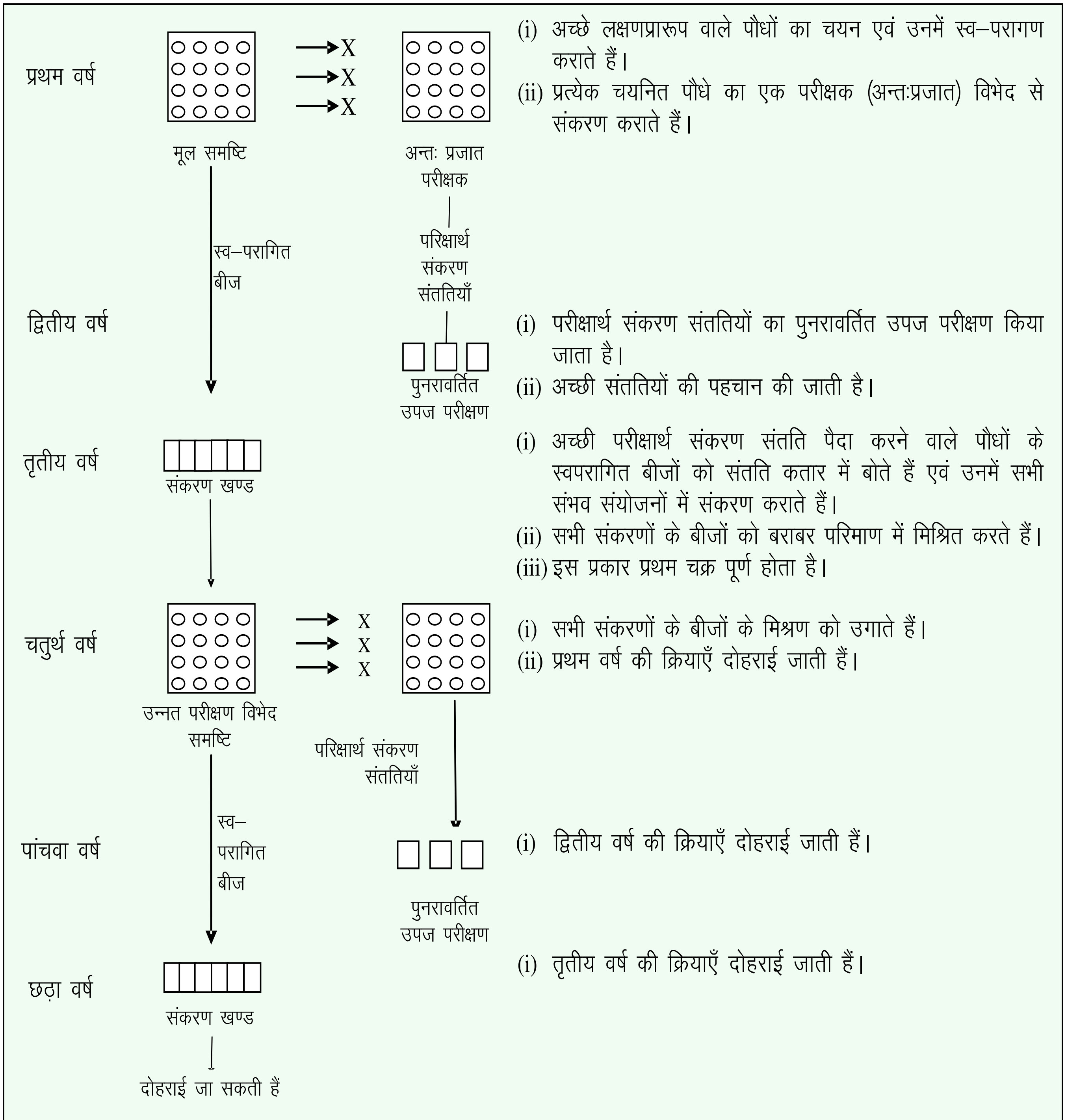

चित्रः 1.11 – विशिष्ट संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती वरण की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

व्युत्क्रम आवर्ती चयन (Reciprocal Recurrent Selection) : इस विधि का सुझाव काम्सटॉक, रॉबिन्सन एवं हार्वे (Comstock, Robinson and Harvey) ने 1949 में दिया था। व्युत्क्रम आवर्ती चयन का उद्देश्य सामान्य संयोजन क्षमता एवं विशिष्ट संयोजन क्षमता को एक साथ ही बढ़ाना होता है। (चित्र 1.12)

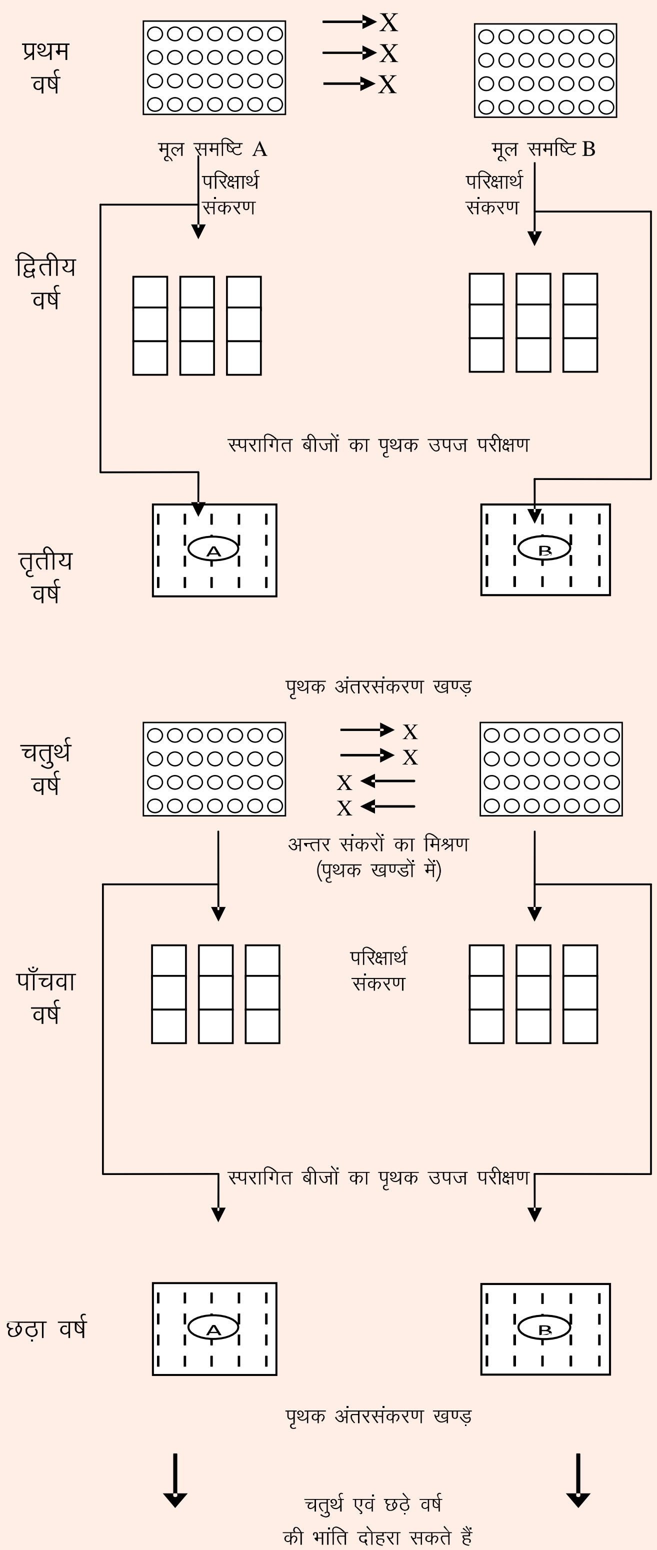

प्रथम वर्ष

(i) इसमें दो समष्टियों A एवं B को आस–पास उगाया जाता है।

(ii) समष्टि A में से कई उत्कृष्ट पौधों का चयन करके उनमें स्वपरागण कराते है।

(iii) A से चुने गए प्रत्येक पौधे का समष्टि B के 8–10 पौधों से संकरण (परीक्षार्थ संकरण) कराया जाता है।

(iv) समष्टि B में से भी कई उत्कृष्ट पौधों का चयन करके उनमें स्वपरागण कराते हैं तथा चुने गए पौधों का समष्टि A के पौधों से परीक्षार्थ संकरण कराया जाता है।

द्वितीय वर्ष

(i) परीक्षार्थ संकरण संततियों का उपज परीक्षण करते हैं। (दोनों समष्टियों का अलग–अलग)

तृतीय वर्ष

(i) अच्छी परीक्षार्थ संकरण संतति पैदा करने वाले पौधों के स्वपरागित बीजों से संततियाँ उगाते हैं।

(ii) संततियों में सभी संभव संयोजनों में संकरण (दोनों समष्टियों का अलग–अलग) होने दिया जाता है।

चतुर्थ वर्ष

(i) सभी संकरणों के बराबर बीज मिलाकर सुधरी समष्टि उगाते है। (दोनों समष्टियों का अलग–अलग)

(ii) प्रथम वर्ष की क्रियाएँ दोहरायी जाती है।

पाँचवा वर्ष

(i) द्वितीय वर्ष की क्रियाएँ दोहरायी जाती है।

छठ़ा वर्ष

(i) तृतीय वर्ष की क्रियाएँ दोहरायी जाती है।

चित्रः 1.12 – व्यूत्क्रम आवर्ती वरण की विधि का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन

इसमें दो समष्टियों, A एवं B को आस–पास उगाया जाता है। समष्टि A में से उन्नत लक्षण प्रारूप वाले कई पौधों का चयन करते है और उनको स्वपरागित करते हैं। इसके साथ ही, उनमें से प्रत्येक पौधे का समष्टि B के 8–10 पौधों से परीक्षार्थ संकरण करते है। इसी प्रकार से उन्नत लक्षण प्रारूप के आधार पर समष्टि B में से पौधों को छाँटकर उनमें स्वपरागण तथा साथ ही प्रत्येक पौधे का समष्टि A का किन्ही 8–10 पौधों से संकरण कराते है।

द्वितीय वर्ष, व्यक्तिगत पौधों के स्वपरागित बीज को सुरक्षित रखते हैं तथा परीक्षार्थ संकरण संततियों को उपज परीक्षण में उगाते हैं। परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर उन्नत संततियों को पहचाना जाता है।

तृतीय वर्ष, उत्त्कृष्ट परीक्षार्थ संकरण संततियों को उत्पन्न करने वाले पौधों के स्वनिषेचित बीजों को अलग–अलग संतति पंक्तियों में उगाया जाता है। इन संततियों का आपस में सभी संभव संयोजनों में संकरण किया जाता है। इन सभी संकरणों के बीजों को बराबर मात्रा में लेकर मिश्रित कर लेते हैं। इस प्रकार समष्टियों में प्रथम चयन चक्र पूरा होता है। बीजों के इस मिश्रण को उगाने से प्राप्त समष्टि में पुनः चयन करते हैं। (प्रथम से तृतीय वर्ष की क्रियाएँ), इसे द्वितीय चयन चक्र कहते हैं। व्युत्क्रम आवर्त्ती चयन द्वारा सुधरी हुई जनसंख्याओं को वाणिज्य संकर बीज (Commercial Hybrid Seed) को उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

भारत के महत्वपूर्ण कृषि शोध संस्थान
(Important Agriculture Research Stations of India)

क्र. सं.	संस्थान / केन्द्र (Institute/Centre)	स्थान
1.	कपास तकनीकी अनुसंधान प्रयोगशाला। Cotton Technological Research Laboratory (CTRL).	माटुंगा (मुंम्बई)
2.	केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान। Central Rice Research Institute (CRRI).	कटक (उड़ीसा)
3.	केन्द्रीय तंबाकू अनुसंधान संस्थान। Central Tobacco Research Institute (CTRI).	राजामुंद्री (आं.प्र.)
4.	केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान। Central Arid Zone Research Institute (CAZRI).	जोधपुर (राजस्थान)
5.	गन्ना प्रजनन संस्थान। Sugarcane Breeding Institute (SBI)	कोयंबटूर (तमिलनाडु)
6.	जूट तकनीकी अनुसंधान प्रयोगशाला। Jute Technological Research Laboratory (JTRL).	कोलकाता (प. बंगाल)
7.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान। Indian Agricultural Research Institute (IARI).	नई दिल्ली
8.	भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान। Indian Sugarcane Research Institute (ISRI).	लखनऊ (उ.प्र.)
9.	भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान। Indian Institute of Pulses Research (IIPR).	कानपुर (उ.प्र.)
10.	ज्वार अनुसंधान निदेशालय। Directorate of Sorghum Research (DSR).	हैदराबाद (आं.प्र.)
11.	राष्ट्रीय पादप बायोटेक्नोलॉजी अनुसंधान केन्द्र। National Research Centre on Plant Biotechnology (NRCPB).	नई दिल्ली (IARI)
12.	मूँगफली अनुसंधान, निदेशालय। Directorate of Groundnut Research (DGR).	जूनागढ़ (गुजरात)
13.	राष्ट्रीय सरसों अनुसंधान केन्द्र। National Research Centre of Rapeseed and Mustard.	भरतपुर (राजस्थान)
14.	सोयाबीन अनुसंधान निदेशालय। Directorate of Soybean Research.	इंदौर (म.प्र.)
15.	केन्द्रीय कपास अनुसंधान। Central Institute for Cotton Research.	नागपुर (महाराष्ट्र)
16.	तिलहन अनुसंधान निदेशालय। Directorate of Oilseeds Research.	हैदराबाद (आंन्ध्र प्रदेश)

17.	भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान। Indian Institute of Wheat & Barley Research.	करनाल (हरियाणा)
18.	भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान। Indian Institute of Maize Research.	लुधियाना (पंजाब)
19.	राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र National Research Centre on Seed Spices (NRCSS).	तबीजी, अजमेर (राजस्थान)

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पौधों के जीनप्रारूप (Genotype) में ऐसे परिवर्तन करने का विज्ञान या तकनीक, जिससे वे मानव के लिए अधिक उपयोगी हो सके, पादप प्रजनन कहलाता है।
2. पादप प्रजनन के द्वारा किसी फसल में विकास करने के लिए विविधता का होना आवश्यक होता है।
3. किसी जंगली प्रजाति का मनुष्य के द्वारा प्रबन्धन करने को ग्राम्यन कहते है।
4. किसी फसल की विभिन्न प्रजातियों एवं जंगली जीन प्रारूपों में उपस्थित आनुवांशिक द्रव्य को उस फसल का जननद्रव्य कहते हैं।
5. किसी लक्षण के लिए भिन्न जीनप्रारूपों में परस्पर संकरण कराकर संकर बनाये जाते हैं।
6. पुंज विधि, वंशावली विधि, प्रतीप संकरण विधि, संकरण पर आधारित विधियां हैं।
7. समूह चयन, शुद्ध वंशक्रम चयन, चयन पर आधारित विधियाँ हैं।
8. किसी जीन प्रारूप को नये स्थान या वातावरण में उगाने की क्रिया को पादप पुरःस्थापन कहते हैं।
9. किसी जीनप्रारूप का नये एवं परिवर्तित वातावरण में अभ्यस्त होना, अनुकूलन कहलाता है।
10. भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR) जननद्रव्य को एकत्रित एवं संरक्षित करता है।
11. किसी फसल के कृष्ट प्रारूपों एवं जंगली प्रारूपों में उपस्थित विविधता में धीरे–धीरे कमी होने को आनुवांशिक अपरदन कहते हैं।
12. संसार के कुछ विशिष्ट क्षेत्र फसलों की जंगली प्रजातियों के उद्‌गम केन्द्र है।
13. शुद्ध वंशक्रम द्वारा, किसी भी विविधतापूर्ण समष्टि में सर्वाधिक सुधार होता है।
14. प्रतीप संकरण में बार–बार उपयोग किये जाने वाले जनक को आवर्ती जनक कहते हैं।
15. किसी जीव के किसी लक्षण में आकस्मिक एवं वंशागत परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं।
16. पुंज विधि में संकरण के पश्चात् F_2 एवं बाद की पीढ़ीयों में प्रकृति के द्वारा चयन होता है एवं पौधों की कटाई पुंज में करते हैं।
17. उत्परिवर्तन को प्रेरित करने वाले भौतिक एवं रासायनिक कारकों को उत्परिवर्तजन कहते है।
18. जीवों में गुणसूत्र संख्या, दैहिक गुणसूत्र संख्या का गुणनफल (Multiple) नहीं हो, इस स्थिति को असुगुणिता कहते हैं।
19. किसी जीन प्रारूप में दैहिक गुणसूत्र संख्या (2n) की 2 से अधिक प्रतियाँ होती हैं, तो इस अवस्था को बहुगुणिता कहते हैं।
20. जिन जीनप्रारूपों में युग्मकी गुणसूत्रों की संख्या (x) उपस्थित हो, उनको एक गुणित कहते हैं।
21. वह जीन प्रारूप जिनमें युग्मकी गुणसूत्रों (x or n) की दो प्रतियाँ उपस्थित हो उनको द्विगुणित (2x or 2n) कहते हैं।
22. वह जीन प्रारूप जिनमें गुणसूत्रों की संख्या दैहिक गुणसूत्रों की संख्या का गुणनफल हो, उन जीन प्रारूपों को सुगुणित कहते हैः– उदाहरणः 2n, 3n आदि।
23. जब किसी एक लक्षण के जीन को, एक जीन प्रारूप से दूसरे जीनप्रारूप में स्थानान्तरित करना हो तब प्रतीप संकरण का उपयोग किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1 भारत में पादप जनन द्रव्य संरक्षण केन्द्र का नाम है ?

(अ) ICAR (ब) NBPGR

(स) IBPGR (द) IARI

2 जेंकिन्स (Jenkins) ने 1940 में किस आवर्ती वरण के बारे में बताया था ?

(अ) शुद्ध वंशक्रम चयन (ब) समूह चयन

(स) सामान्य संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन

(द) विशिष्ट संयोजन क्षमता के लिए आवर्ती चयन

3 दूरस्थ संकरण का अभिप्राय निम्न में से किससे है ?

(अ) दो किस्मों के बीच संकरण

(ब) दो जातियों के बीच संकरण

(स) दो जीनस के बीच संकरण

(द) ब एवं स सही है।

4 निम्न में कौनसी विधि, संकरण द्वारा प्रजनन की विधि नहीं है ?

(अ) पुंज विधि (ब) प्रतीप संकरण

(स) वंशावली विधि (द) शुद्ध वंशक्रम विधि

5 उत्परिवर्तन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था ?

(अ) सेट राईट 1791 (ब) ह्यूगो डी व्रीज 1900

(स) निल्सन ऐहले 1908 (द) जेंकिन्स (Jenkins)

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. पादप प्रजनन को परिभाषित कीजिये।
2. ग्राम्यन के आधार पर जननद्रव्य को कितने भागों में बाँटा जा सकता है ?
3. पादप पुरःस्थापन क्या है ?
4. शुद्ध वंशक्रम वरण के दो लाभ लिखिये।
5. पुंजविधि को परिभाषित कीजिये।
6. उत्परिवर्तन किसे कहते हैं ?
7. टेस्ट क्रॉस क्या है ?
8. आवर्ती जनक किसको कहते हैं ?
9. सुगुणिता को परिभाषित कीजिये।
10. गेहूँ की उत्पत्ति से आप क्या समझते हैं ?
11. बहुसंकरण विधि क्या है ?
12. स्वतः उत्परिवर्तन की सम्भावना की दर क्या है ?
13. 2n + 2 की अवस्था किस प्रकार की बहुगुणिता को दर्शाती है ?
14. IARI का पूरा नाम लिखिये।
15. एक गुणित एवं अगुणित में अन्तर बताइये ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. ग्राम्यन को परिभाषित कीजिए। ग्राम्यन के अन्तर्गत कौन–कौन से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं ?
2. प्रसुप्ति से क्या अभिप्राय है ?
3. ग्राम्यन के दौरान चयन को समझाइये।
4. पादप पुरःस्थापन के लाभ बताइये।
5. संगरोध की आवश्यकता को बताइये।
6. उद्गम केन्द्र से क्या अभिप्राय हैं एवं उद्गम केन्द्र के प्रकार लिखिये।
7. निम्नलिखित फसलों के उद्गम केन्द्र बताइये ?
   (क) गेहूँ (ख) धान (ग) आलू (घ) गन्ना (ङ) चना
8. जीन कोष एवं उसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
9. आनुवांशिक अपरदन क्या है एवं इसके मुख्य कारणों को लिखिये।
10. शुद्ध वंश क्रम चयन एवं समूह चयन में अन्तर लिखिये।
11. वंशावली रिकॉर्ड से आप क्या समझते हैं ?
12. स्व–बहुगुणिता क्या है ?
13. स्वपरागित एवं परपरागित फसलों में मूलभूत अन्तर क्या है ?
14. प्रतीप संकरण का किन विशेष परिस्थितियों में उपयोग किया जाता है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पादप प्रजनन से आपका क्या अभिप्राय है ? इसके विभिन्न उद्देश्यों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
2. पादप पुरःस्थापन को परिभाषित कीजिये। पादप पुरःस्थापन का ध्येय क्या है ? इसकी उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।
3. आवर्ती वरण क्या है ? सामान्य संयोजकता के लिए आवर्ती वरण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।
4. संकरण में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न पदों ॅ(जमचे) का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
5. उत्परिवर्तन क्या है ? इसके द्वारा फसलों में सुधार की क्रिया का विस्तार से वर्णन कीजिये।

उत्तरमाला :

(1) ब, (2) स, (3) द, (4) द, (5) ब